मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान व प्रस्तुति

जवाहरलाल नेहरू *विश्वविद्यालय* ***की एम .फिल. की उपाधि के हेतु प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबन्ध***

गीता

महिला अध्ययन केन्द्र

सामाजिक विज्ञान संस्थान

जवाहरलाल नेहरू *विश्वविद्यालय*

नई दिल्ली-110067

2017

CENTRE FOR WOMEN'S STUDIES
School of Social Sciences-II
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067
Tel. : 91-11-26704166
E-mail : wonmenstudiesprogramme@gmail.com

Date: 25/07/2017

DELCARATION

I, Geeta, hereby declare the thesis entitled **"मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान व प्रस्तुति"** submitted by me for the award of the degree of **Master of Philosophy** of Jawaharlal Nehru University is my own work. The thesis has not been submitted for any other degree of this University or other university.

GEETA

CERETIFICATE

We recommend that this thesis be placed before the examiners for evaluation.

DR. LATA SINGH
(Chairperson,CWS)

DR. LATA SINGH
(Supervisor,CWS)

विषय-सूची

आभार	**4-6**
परिचय	**7-11**
अध्याय 1	
पत्रकारिता के विकास में महिलाओं और दलितों के सवाल	12-41
1.1 मीडिया की ऐतिहासिक भूमिका	14-17
1.2 ऐतिहासिक सन्दर्भ में दलित पत्रकारिता	17-24
1.3 प्रिंट मीडिया पर पूंजीवादी प्रभाव	24-29
1.4 प्रिंट मीडिया में महिलाओं की भागीदारी व उनसे संबंधित मुद्दे	29-**37**
1.5 प्रिंट मीडिया में दलितों की भूमिका	37-41
अध्याय 2	
पत्रकारिता में दलित ख़बरों की दशा और दिशा	42-66
अध्याय 3	
दलित महिला पत्रकारों के अनुभव और संघर्ष	67-102
अध्याय4	
उपसंहार : निरंतर संघर्ष	103-107
संदर्भ ग्रंथ सूची	108-119

आभार

दलित महिलाएं समाज के सबसे निचले स्तर पर आती हैं यही कारण है कि विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के काम हो रहे हैं। परंतु, इनसे संबंधित काम अंत में होते हैं या होते ही नहीं है। अभी भी हमारा समाज उस दहलीज पर नहीं पहुंचा है कि वह दलित महिलाओं को अपने कार्य और संस्थान में शामिल करें। दलित विषयों पर नए नजरिये से अकादमिक शोधो का सफ़र भी सामाजिक स्थिति से कम चुनौतिपूर्ण नहीं है, इसलिए इस विषय **"मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान व प्रस्तुति"** पर शोध कराने के लिए मैं व्यक्तिगत रूप से जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के महिला अध्ययन केंद्र की विशेष रूप से आभारी हूँ।

अपने विषय का मुख्य विचार मुझे कोर्स वर्क के दौरान बेबी काम्बले और उर्मिला पवार की दलित आत्मलेखन को पढ़कर आया था इसलिए मैं इन आत्म-अनुभवों के प्रति आभारी हूँ। इन्होने मेरे अंतर्गत एक विचार को जन्म दिया जो अत्यंत संघर्षशील रहा है।

मैं खासतौर पर धन्यवाद करना चाहती हूँ अपनी शोध निर्देशक डॉक्टर लता सिंह का जिन्होंने मुझे इस विषय के चयन में मदद की। उन्होंने अत्यंत ही सहनशील होकर मेरे साथ काम किया और मुझे हर स्तर पर प्रोत्साहन दिया, मुझे यह सिखाया की शोध कैसे करते हैं? मैं जहां भी गलत होती, उन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया। जहां मुझे उनकी जरूरत थी वहां मैंने उनको अपने साथ पाया। उन्होंने मुझे तथ्यों को विश्लेषण करने का नया नजरिया प्रदान किया। मेरी इस उपलब्धि में उनका योगदान मैं शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकती।

मैं प्रो. जी. अरुणिमा जी का धन्यवाद करना चाहती हूं जिन्होंने मेरे विषय में अत्यधिक रुचि दिखाकर, मुझे उसके नए पहलूओं से रूबरू कराया। डा. मल्लारिका सिन्हा रॉय, डॉ. नवानीता मोकिल मारुथर, डॉ.पापोरी बोरा सभी ने मेरे विषय पर अत्यधिक महत्वपूर्ण सुझाव दिए

जिसके कारण मेरे शोध पर नए नजरिये का विकास हुआ, उनके सुझावों के अभाव में, मैं कई बिंदुओं से महरूम रह जाती।

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए मैं आभार उन लोगों को करना चाहती हूं जो पहले से ही प्रिंट मीडिया में काम कर चुके हैं और दलित भागीदारी से संबंधित शोध कर रहे हैं। मैं आभारी हूँ उन शोधकर्मियो, लेखकों और पत्रकारों के प्रति जिनकी अकादमिक शोधो, पुस्तकों और लेखो, की सहायता मैंने ली है। इन रचनाओं से कुछ बिंदुओं से अपनी असहमति के बाद भी, इन कामों का अपने ऊपर प्रभाव से मैं इंकार नहीं कर सकती हूँ। मैं आभारी हूँ जया रानी, एजाज अशरफ, प्रो.विवेक कुमार जिन्होंने अपने अनुभव और लेखों द्वारा मेरे शोध को चुनौतिपूर्ण बनाया। मैं खास तौर पर आभारी हूँ उनके प्रति जिन्होंने अपना कीमती समय मुझे दिया सुजाता मधोक, अंजलि देशपांडे, अनीता भारती और वह दलित महिला पत्रकार जिन्होंने मुझे अपनी पहचान छुपाते हुए कुछ बातें, अपने कार्य क्षेत्र के बारे में बताई और मुझे अपना साक्षात्कार दिया। मैं खासतौर पर धन्यवाद करना चाहती हूँ अनिल चमड़िया का जिनकी तबीयत खराब होने के बाद भी उन्होंने मुझे अपना कीमती समय दिया।

मैं विशेषतौर पर धन्यवाद करना चाहती हूँ प्रत्युष प्रशांत का जो महिला अध्ययन केंद्र में शोध छात्र है जिन्होंने पत्रकारिता विषय पर एक नई दिशा में विश्लेषण करने की समझ विकसित की। और मैं आभारी हूं ममता, अपर्णा, स्वेताश्री, मनोज दा, अरूण ऊरांव के प्रति जिन्होंने मुझे मदद की। मेरे सहपाठी गायत्री, जय प्रकाश, तरंग और उन सभी लोगों का जिन्होंने मेरे विषय से संबंधित कई सुझाव दिए और निरंतर मेरे विषयों पर मुझे संवाद करते रहे। मुझे यह समझाया कि मेरे विषय को और अन्य तरीकों से भी देखा जा सकता है। मैं महिला अध्ययन केंद्र में कार्यरत कंचन मान और धीरेंद्र सिंह रावत को धन्यवाद देती हूँ।

मैं मेरे पापा, मम्मी, भाई(ब्रिजेश, योगेश, चेतन) बहन (प्रियंका) के प्रति अभारी हूँ क्योंकि इन्होने मुझे कभी रूकने नहीं दिया मुझे जब जरुरत थी इन्होने मेरा सहयोग किया।

मैं अपने उन सभी मित्रों को धन्यवाद देना चाहती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मेरे शोध में मदद की। जिनमें श्वेता, शाजिया, रूपिंदर, और खास तौर पर दीपक की आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य को आलोचनात्मक नजरिये से देखा जिससे मुझे शोध के संदर्भ में नये विकल्प भी सुझाए। जिनके माध्यम से मैं अपना शोध को बेहतर बना पाई।

मैं अपना शोध समर्पित करती हूं अपनी "मां" और "डॉक्टर लता सिंह" को क्योंकि मेरी माँ ने मुझे तब समझाया। जब मैं कठिनाइयों से भागने का प्रयास कर रही थी उन्होंने मुझे समझाया कि अगर आज तुम मुश्किल से पीछे हटना चाहती हो तो हट जाओ मैं साथ हूँ लेकिन ये याद रखना की फिर तुम कभी जिंदगी में किसी भी कठिनाई का सामना नही कर पाओगी। उनकी सीख, उनका साथ और विश्वास मेरे लिए दवाई की तरह था उन्होंने मुझे कभी अकेले नहीं पड़ने दिया। डॉ लता सिंह मेरे जीवन में दूसरी महिला है जिन्होंने मुझ पर विश्वास किया मेरे अन्दर कमियां होने के बावजूद मेरी खूबियों को गिनाकर कमियों को कम करने का प्रयास किया। मेरी एम. फिम के शोध की उपलब्धि सिर्फ मेरी नहीं है हम तीनो की है।

मैं अपना शोध समर्पित करना चाहती हूं उन दलित महिलाओं को जो समाज के हर मोर्चे पर कही अपनी पहचान छिपाकर तो कभी अपनी पहचान बता कर, अपने समुदाय और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक नया रास्ता बनाने के लिए संघर्षरत है। बेहतर कल की तलाश में उनका संघर्ष आने वाली नई पीढ़ियों के लिए एक प्रेरणा है।

परिचय

मौजूदा समय में आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करने वाला भारतीय मीडिया का स्वरूप वंचित और दमित समुदायों के संदर्भ में परेशान करने वाला दिखता है। भारतीय मीडिया एक बड़े समुदायों के सवालों को प्रासंगिक बनाने का प्रयास जरूर करता है परंतु उसकी अभिव्यक्ति इस समुदाय की वस्तुस्थिति से कोसों दूर दिखती हैं। ख़ासकर तब, जब जनसंचार के माध्यम के रूप में मीडिया की भूमिका एक बड़े समुदाय के लिए आक्सीजन का काम कर सकती है। वहां मीडिया वंचित और दमित समुदाय के ख़बरों को एक ख़ास मानसिकता या राजनीति से प्रभावित होकर, उनकी समस्याओं का वस्तुनिष्ठ तरीके से मूल्यांकन नहीं करती है, या उस समुदाय के ख़बरों को प्रासंगिक बनाने का प्रयास नहीं करती है।[1] इस यथास्थिति में मेरा शोध "***मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान और प्रस्तुति***" उन परिस्थितियों की पहचान करने का एक छोटा सा प्रयास है(यहां प्रिंट मीडिया से मेरा मतलब समाचार पत्रों से है)[2]। इस प्रयास में मैंने दलित पत्रकारों की मीडिया संस्थानों में स्थितियों का भी जायजा लिया है विशेषकर दलित महिला पत्रकारों का। क्योंकि दलित समुदायों की मीडिया संस्थानों में भागीदारी का अनुपात सीमित या नहीं के बराबर है। दलित समुदायों के लिए समाचार पत्रों के मायने को स्पष्ट करते हुए, बाबा साहब आंबेडकर ने कहा था कि-

"हाथ में यदि अख़बार हो तो महान व्यक्ति बनना आसान हो जाता है"[3]

---

[1] हाल के दिनों में भारतीय मीडिया में यह देखने को मिलता है कि दलित समुदाय के कई बड़े घटनाओं को समुचित कवरेज नहीं दिया गया। जबकि दलित समुदाय की उपलब्धियों की चर्चा करने में उनके "दलित" होने को नव-मीडिया ने जरूरत से अधिक ही प्रासंगिक बनाने का प्रयास किया।

[2] गौरतलब है कि भारतीय मीडिया के इतिहास में आजादी के पहले अख़बार, रेडियों, पत्र-पत्रिकाएं संचार के साधन के रूप में थे, जिसे आजादी के बाद प्रेस कहा जाने लगा, और 90 के दशक के बाद टी.वी पत्रकारिता के विकास के बाद, इसे मीडिया शब्द कहा जाने लगा। यहां मैने मुख्यधारा मीडिया का संदर्भ अख़बारों से लिया है और उसका प्रयोग भाषाई अखबारों से है।

[3] राबिन जैंफ्री, भारत में समाचार पत्र क्रांति, अनु. डां सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पेज न०- 156

बाबा साहब दलितों के उत्थान और विकास के लिए अख़बारों की महत्व को पहचान रहे थे, इसलिए उन्होंने स्वयं कई पत्रों का संपादन दलित समुदायों के मुखर अभिव्यक्ति के लिए किया।

जिसके आधार पर वी.के. नारायणन निष्कर्ष निकालते है कि -

> "दलितों के लिए एक समुचित मीडिया न होने के कारण उनके बीच 'अख़बार' निर्मित करने वाला कोई महान व्यक्ति नहीं है।"[4]

सीमित भागीदारी के अभाव में मीडिया दमित और वंचित समुदायों के प्रश्नों को उस परिपेक्ष्य में नहीं रख पाते, जिसकी उम्मीद या अपेक्षा मीडिया से लोकतंत्र के चौथे खंभे के रूप में की जाती है।

दलित महिलाओं के पहचान और प्रस्तुति समाचार पत्रों में ऐतिहासिक रूप से बहुत उत्साह पैदा करने वाला नहीं दिखता है। हालांकि आजादी के पहले "छूआछूत" जैसी सामाजिक बुराईयों पर समाचार पत्रों और तत्कालीन संचार माध्यमों में प्रतिरोध दिखता है, लेकिन यह विरोध सामाजिक जीवन में उपलब्ध बुराईओं के विरुद्ध कमजोर ही दिखता है। क्योंकि अगर सामाजिक जीवन में लोगों पर इन प्रतिरोधों का प्रभाव पड़ता, तो ये सामाजिक बुराईयों या इनके कारण भेदभाव का प्रभाव आज देखने को नहीं मिलता। वास्तव में आजादी के पहले सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध लेखन में अधिंकाश समाज सुधारक या पत्रकार जाति, कूरतियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष में मानवतावादी द्वंद में उलझ जाते है, जिसके कारण इन दिक्कतों के साथ अस्मिता का प्रश्न कभी स्थापित ही नहीं हो पाता है। हालांकि अस्मिता के विमर्श को स्थापित करने का प्रयास और सामाजिक व्यवहार में बदलावों की कोशिश दिखती है। "चांद पत्रिका अछूत अंक" इसका बेजोड़ उदाहरण हो सकता है, उसमें प्रकाशित लेख इस

[4] राबिन जैंफ्री, भारत में समाचार पत्र क्रांति, अनु. डां सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पेज न०- 156

सत्य को स्थापित करती है कि समाज में पिछड़े और दमितों की आवाज थी। जिसको उस दौर के लोगों ने प्रासंगिक बनाने का प्रयास नहीं किया। इस अंक की विषय सूची का ही जायजा लिया जाए तो कई तस्वीरें स्पष्ट होती है। इस पत्रिका के चित्रों में पहला चित्र भी सामाजिक व्यवहारों में हो रहे बदलावों को बयां करता है।

मौजूदा समय में स्थिति इस लिए अधिक चुनौतिपूर्ण है क्योंकि आजाद भारत में देश के सभी नागरिकों को संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। जिसमें इस तरह के सामाजिक भेदभाव के लिए दंड तक का प्रावधान है। मीडिया के संदर्भ में यह और भी अधिक चुनौतिपूर्ण इसलिए है कि सामाजिक भेदभाव जैसी घटनाओं के ख़बरों को छापने के लिए, वह तटस्थ नहीं है। हाल के दिनों में दमित और वंचित समुदायों के साथ हुए कई अमानवीय घटनाओं पर मीडिया की भूमिका लोकतांत्रिक नहीं कहीं जा सकती है। जो यह सिद्ध करता है कि आजाद भारत में समाज और सामाजिक संस्थाओं में जिसका एक हिस्सा मीडिया भी है, लोकतांत्रिक चेतनाओं का विकास या लोकतांत्रिक व्यवहारों का विकास नहीं हो सका है।

इस परिपेक्ष में मेरा शोध "***मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान और प्रस्तुति***" का चरित्र ही इस तरह का था कि मुझे साक्षात्कार के माध्यम से ही पत्रकारों के अनुभवों के आधार पर दलित महिलाओं की पहचान और प्रस्तुति के कारणों की जटिलताओं को समझना था। इसलिए मैंने इस समस्या को समझने के लिए साक्षात्कारों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया। इसके साथ-साथ विषय की गंभीरता को समझने के लिए सहायक सामग्री का अवलोकन करना भी जरूरी था। दलित समस्याओं की प्रस्तुती के संदर्भ में समाचार पत्रों के दलित विषयक समबंधी लेखों, संपादकीय और ख़बरों को भी माध्यम बनाया गया है, जिससे दलित महिलाओं की पहचान और प्रस्तुती को समझा जा सकें।

प्रथम अध्याय ***"पत्रकारिता के विकास में महिलाओं और दलितों के सवाल"*** के लिए मेरे जेहन में यह प्रश्न मुख्य था कि प्रिंट मीडिया में महिलाओं की भागीदारी किस प्रकार की रही हैं? इसको समझने के प्रयास मैं ने यह पाया कि महिलाओं की भागीदारी काफी सीमित है, जबकि

मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों में महिलाओं की भागीदारी में लगातार इजाफ़ा हो रहा हैं। पर मीडिया संस्थानों में अपनी जगह नहीं बना पा रही है। अगर इक्का-दुक्का महिलाएं मीडिया संस्थानों में आ भी रही हैं तो वह अपने कार्य को करने के लिए स्वतंत्र नहीं है, जब तक वह स्वयं को स्थापित नहीं कर लेती है। इस अध्याय में यह तथ्य भी उभारने का मेरा प्रयास रहा है कि प्रिंट मीडिया का यह दावा है कि उसने महिला की समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण संघर्ष किया है, जो सत्य भी है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। परंतु, गौर करने वाला तथ्य यह भी है कि प्रिंट मीडिया ने आधी आबादी के एक बड़े महिला समुदायों की समस्याओं को समझा ही नहीं है। इस बड़ी महिला समुदायों के सवालों को प्रिंट मीडिया ने मनमाने तरीके से अभिव्यक्त किया है।

इन्हीं संदर्भों के साथ दूसरे अध्याय में ***"पत्रकारिता में दलित ख़बरों की दशा और दिशा"*** प्रिंट मीडिया में दलित समुदायों के ख़बरों की अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। इस अध्याय का उद्देश्य मुख्यधारा प्रिंट मीडिया की उस मानसिकता को समझने का प्रयास है कि दलित समुदायों की ख़बरें समाचार पत्रों के लिए क्या मायने रखती है। एक खास समुदाय के ख़बरों के प्रकाशन में मुख्यधारा प्रिंट मीडिया की क्या राजनीति है? दलित समुदायों के पत्रकारों की लगभग अनुपस्थिति की मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में क्या मायने हैं? इसके लिए मैं ने सिविल सेवा में चयनित टीना डाबी के ऊपर प्रकाशित सामग्रीयों का मूल्यांकन किया है। इस अध्याय में गुजरात के ऊना में हुई घटना का भी विश्लेषण किया गया है। क्योंकि मुख्यधारा प्रिंट मीडिया दलित समुदाय की उपलब्धि और शोषण/भेदभाव के विषयों पर बहुत अधिक विरोधाभासी है। जो बार-बार यह सिद्ध करता है कि मुख्य़धारा प्रिंट मीडिया में दलित समुदायों की यात्रा अभी शुरू भी नहीं हुई है, और वह अभी से ही विरोधाभासों को समेटे हुए हैं।

तीसरे अध्याय "***दलित महिला पत्रकारों के अनुभव और संघर्ष***" को मैंने पत्रकारों विशेष कर महिला पत्रकारों के अनुभवों के आधार पर रखा है, जो उन्होंने मीडिया संस्थानों में कार्य करते हुए महसूस किया हैं। इस अध्याय में मेरा यह प्रयास था कि मैं विशेष रूप से दलित महिला

पत्रकारों के अनुभव को देख सकूं। परंतु, यह नहीं हो सका क्योंकि मुझे कोई भी दलित महिला पत्रकार नहीं मिल सकी जो अपनी पहचान के साथ मीडिया संस्थान में काम करते हुए अपनी समस्याओं पर बात कर सके। मैंने कुछ दलित महिला पत्रकारों से बात की, जो अपनी जातीय पहचान छुपाकर प्रिंट मीडिया में काम कर रही है। परंतु, वो साक्षात्कार के लिए तैयार नहीं हुई, उन्हें अपनी नौकरी खोने का डर था। जबकि वो दलित महिला पत्रकारों पर शोध कार्य को लेकर काफी उत्साहित भी थी। स्पष्ट है कि दलित महिला पत्रकार चाहती है कि उनकी समस्याओं को सामाजिक विषय बनाने का प्रयास हो। परंतु, कई तरह के दबावो के कारण स्वयं सामने नहीं आ पाती है। इस अध्याय में उन महिला पत्रकारों से संवाद किया गया है जो दलित महिलाओं की समस्या को लेकर परेशान होती है, पर कुछ बेहतर कर पाने की स्थिति में नहीं हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में जहां महिलाओं के सवाल विकास और पूर्वाग्रही मानसिकता का मिला जुला मिश्रण है, दलित महिलाओं का सवाल हाशिये पर ही सिमटा हुआ है। वो अभी तक विकास के विमर्श से दूर खड़ा है, जिसका मुख्य कारण जहां एक तरफ़ उनकी सहभागिता और भागीदारी में कमी है।तो दूसरी तरफ़, उनकी समस्याओं की वस्तुनिष्ठ समझ का अभाव भी है। मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में काम करने वाले पत्रकार दलित महिलाओं के सवालों को बहुपक्षीय तरीके से समझ ही नहीं पा रहे है। साथ ही साथ मुख्यधारा प्रिंट मीडिया पर होने वाला कई तरह का राजनीतिक, आर्थिक और व्यावसायिक दवाब भी उसे दलित समुदायों के प्रति लोकतांत्रिक नहीं होने देता है। इसलिए दलित पत्रकारिता के संदर्भ में इस तरह की पत्रकारिता की विकास की आवश्यकता है जो दलितों को नायक के रूप में पहचान सकें। जब तक यह शुरू नहीं हो सकेगी, तब तक भारतीय मीडिया स्वयं के लोकतांत्रिक होने का दावा नहीं कर सकती है, यह सिर्फ और सिर्फ ढ़कोसला या उदारवादी मुखौटा है।

अध्याय - 1

पत्रकारिता के विकास में महिलाओं और दलितों के सवाल

पत्रकारिता के विकास में महिलाओं और दलितों के सवाल

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में संचार का कोई भी माध्यम चाहे वह प्रिंट पत्रकारिता, टेलीविजन पत्रकारिता, रेडियो या संचार के नए माध्यम हो, हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। क्योंकि लोकतंत्र के तीन खंभे न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधानपालिका के बाद मीडिया को लोकतंत्र का चौथा खंभा कहा जाता हैं। जिसका उद्देश्य लोगों को शिक्षित करना, सूचित करना और मनोरंजन प्रदान करना है। इस परिपेक्ष्य में, मीडिया हमें हमारे समाज के बारे में जागरूक करते है। हमारे लिए सूचनाओं के संप्रेषण का साधन या माध्यम हैं। मीडिया को हम ज्ञान का स्रोत भी मान सकते है, क्योंकि यह हमें हमारे ही समाज से अवगत भी कराती है। यह भी सच है की मीडिया हमारे समाज का आईना है। जैसा हमारा समाज होता है मीडिया उसी को दर्शाता है क्योंकि मीडिया का निर्माण भी हम लोगों द्वारा ही हुआ है और उसमें कार्य करने वाले लोग भी हमारे ही सामाज का हिस्सा है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा गया है। यह सरकार और जनता के बीच एक पुल का कार्य करती है। जनता के सवाल या मुद्दों को सरकार तक पहुचाती है साथ ही साथ सरकार की नीतियां, फैसले व योजनाएं आदि को जनता तक पहुचाती है और उसका मूल्यांकन कर जनता को उससे अवगत कराती है। हम यह भी कह सकते है की यह जनता के सवालों या विषयों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस स्वरूप में, मीडिया लोकतांत्रिक व्यवस्था में, कही न कही जनसमान्य के विचारों का निर्माण भी करती हैं।

परंतु, एक सजग नागरिक होने के कारण हमारे जेहन में कई प्रश्न उठते रहते है। जैसे की मीडिया की ऐतिहासिक भूमिका क्या रही है? इसका विकास किस तरह हुआ है या यह विकास की दिशा में कैसे आगे बढ़ा है? राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी और अंबेडकर की पत्रकारिता की क्या

भूमिका रही है? विकास के इस चरण में किस प्रकार पूंजीवाद ने इसको प्रभावित किया है? महिलायों की क्या भूमिका है? स्वयं इस संस्थान में या प्रिंट मीडिया में महिलाओं से संबंधित प्रश्नों को किस प्रकार देखता है? दलितों की क्या भूमिका हैं? अपने लोकतांत्रिक स्वरूप में वह दलित समुदायों के प्रति कितना लोकतांत्रिक हैं?

1.1 मीडिया की ऐतिहासिक भूमिका

मीडिया को समझने के लिए जरुरी है कि हम मीडिया का ऐतिहासिक संदर्भ देखें व समझने का प्रयास करें। क्योंकि समकालीन मीडिया आपनी प्रगतिशील विचारों की प्रेरणा औपनिवेशिक काल की पत्रकारिता से ही लेता है। एन. राम के अनुसार -

> "समकालीन भारत में न्यूज़ मीडिया का बदलता स्वरुप" पत्रकारिता के ऐतिहासिक संदर्भो की चर्चा करते हुए बताते है कि भारतीय प्रेस दो दशक पुरानी है। भारतीय प्रेस को मजबूती व आकार भारतीय इतिहास द्वारा ही मिली है। भारत का स्वतंत्रता संघर्ष व भारत में सामाजिक सुधार के लिए किए गए परिवर्तन (reforms) ने भारतीय प्रेस को एक प्रकार का दृष्टिकोण प्रदान किया है, आकार प्रदान किया है।"[5]

प्राथमिक स्तर पर देखा जाए तो मीडिया का जन्म अत्यधिक गंभीर परिस्थितियों में हुआ था। मीडिया ने भारत को केवल आधुनिक राष्ट्र बनाने में ही नहीं बल्कि भारत को स्वयं अपनी सांस्कृतिक व सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति के साथ-साथ उपनिवेशवादी बेडियों से आजादी दिलाने में महत्वपूर्ण व गंभीर भूमिका निभाई हैं।

दूसरी तरफ़, भारतीय प्रेस ने ऐतिहासिक समय से ही अनेकता अर्थात भिन्न-भिन्न विचारधाराएं देखने को मिलती हैं। इसका कारण है भारत अनेकता में एकता रखने वाला देश है या भारत विविधताओं से भरा हुआ देश हैं। यहां सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विभिन्ताएं देखने को

[5] एन.राम.,"द चेंजिंग रोल आंफ द न्यूज मीडिया इन कन्टेपरी इंडिया".इन इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 72वां सेसन, पंजाबी यून्वर्सिटी, 2011. पेज न०- 10-13,

मिलती हैं। इस स्थिति में स्वतंत्र व लोकतांत्रिक प्रेस वही है जो इन विभिन्ताओं को अपनाएं और इस विविधता को जगह देकर उसे मजबूती प्रदान करें।

रांबिन जेफ्री औपनीवेशिक काल में पत्रकारिता को केवल आदर्श स्थिति में ही नहीं देखते है। वह इसे आभिव्यक्ति की आजादी के साथ-साथ व्यावसायिकता संबंधित परिवर्तन के साथ भी जोड़ कर देखते हैं। पत्रकारिता के इस चरित्र पर ध्यान आकर्षित करते हुए रांबिन जेफ्री कहते है कि-

> "स्वतंत्रता के प्रारंभिक समय में पत्रकारिता तीन क्षेत्रों में बटी हुई थी। पहला, वह जो अपने अख़बार व लेखन द्वारा ब्रिटिश राज्य के खिलाफ स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। दुसरा, वह जो की अपना परिवार पालन या जीविकोपार्जन के लिए अख़बार चला रहे थे जिनका स्वतंत्रता से कुछ खास मतलब नहीं था। केवल आजीविका चलाना ही एक मात्र उदेश्य था। तीसरा, ब्रिटिश पूंजीवादी अंग्रेजी अख़बार चला रहे थे जिसका उदेश्य केवल स्वंय अंग्रेजो व उनसे जुड़े भारतीय पूंजीपतियों के मनोरंजन और सूचनाओ की जानकारी के लिए था"[6]

औपनिवेशिक समय की पत्रकारिता में दलित व पिछड़े समुदाय की आवाज को लेकर कई प्रकार के प्रश्न उठते रहे है कि उस समय पत्रकारिता इन समुदायों के प्रश्नों के साथ कितनी न्यायसंगत थी? क्योंकि यह प्रश्न आजादी को सामाजिक संदर्भ के प्रश्नों से जोड़ती थी, यह सवाल भी उतना ही प्रासंगिक है। कई अख़बारों में जातिप्रथा, छुआछूत, स्त्रियों की स्वतंत्रता व उनके आधिकार, संबधित लेख छपते रहे थे तो कई पत्र-पत्रिकाओ में इन प्रथाओं को बनाये रखने के लेख भी देखने को मिलते हैं। जबकि वर्ण-व्यवस्था वाली सोच का खंडन भी किया जा रहा था। जैसे की बाबा साहेब लिखते हैं कि -

> "किसी भी साधु ने जाति-भेद और अस्प्रश्यता के विरोध में लड़ाई नहीं लड़ी। उन्हें मनुष्य--मनुष्य के बीच के संबंध कैसा हो, इससे कुछ लेना देना नहीं था। वह सिर्फ ईश्वर के नज़र में सबों को समान मानते थे।"[7]

इसपर बरक्स बटरोही बताते हैं कि -

---

[6] रोबिन जेफ्री,"भारत में समाचार पत्र क्रांति" अनु. डा. सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पेज न- 94

[7] मूकनायक, 14.02.1920, अनु.श्यौराज सिंह बेचैन, बहुजन संघर्ष, 17.10.1993

> "औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज की कूपमंडूकता को तोड़ने के लिए औपनिवेशिक प्रयासों को भारतीय समाज सुधारकों ने सहजता से नहीं लिया। उस दौर के पत्र-पत्रिकाओं में भारतीय समाज को जोड़ने वाले प्रयासों पर असहजता देखने को मिलती है।"[8]

इन विरोधाभासी परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हुए, यह समझा जा सकता है कि उस दौर की पत्रकारिता सरकारी दमन से लड़ने और समाज की रूढ़िशवादी सरंचना से संघर्ष कर रही थी। एक तरफ़, पत्रकारिता अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने में महत्वपूर्ण हथियार साबित हो रही थी। तो वही दूसरी तरफ़, पत्रकारिता समाज में मौजूद कुरितियों के खिलाफ लड़ने वालों के साथ नहीं थी। विभिन्न महापुरुष, जो महिलाओं के विरूद्ध कुप्रथा की समाप्ति की बात करते थे या जाति-प्रथा के कारण छूआछूत के खत्म करने की बात करते थे। पर वो कभी भी इसके मूल कारणों पर चोट नहीं करते थे या इन असमानता को जड़ मूल से खत्म करने की बात नहीं करते थे। इस असमानता की पहचान की कोशिश डा.अंबेडकर की पत्रकारिता में देखने को मिलती है। उन्हें स्वयं पत्रिका या अख़बार प्रारंभ करना पड़ा। हम कह सकते है कि स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ सामजिक स्वतंत्रता का संघर्ष भी चल रहा था जिसकी आभिव्यक्ति डा.अंबेडकर के कई पत्रों में देखने को मिलती है। इन्हीं कारणों से हिंदी पत्रकारिता का उदभव और विकास स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ तो हुआ। परंतु, इसमें जातिय आस्मिता भी काफी मजबूत थी। औपनिवेशिक देशकाल में पत्रकारिता में दलितों विषयों के संदर्भ में श्यौराज सिंह "बैचेन" बताते हैं कि-

> "इस दौर के पत्रकारिता में दलित समुदाय के प्रश्नों के आधार पर हम इन निष्कर्ष पर पहुंच सकते है कि इस काल में हिंदी पत्रकारिता में दलित प्रश्नों, गैर दलित पत्रकारों के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही थी, क्योंकि दलित वर्ग में पत्रकार कम थे और उनकी समस्याएं आधिक थी। दलितों के सवाल को मानवतावादी उदार नज़रिये से देखा जा रहा था, तो वर्ण और जाति जैसे विषयों

[8] बटरोही, हिंदी पत्रकारिता की पृष्ठभूमि- आलोचना अंक 15 अक्टूबर-दिसंबर, 1970, पेज न.51

पर काफी विरोधाभसी थी। पत्रकारिता निश्चित मूल्यों और प्रतिमानों के आग्रहों से बंधी हुई थी।"[9]

आजादी के बाद पत्रकारिता ने आर्थिक दवाबों में अपने स्वरूप में बदलाव किया है और वह व्यावसायिक हो गयी हैं। परंतु, अभी भी उससे लोकतांत्रिक भूमिका की उम्मीद उसकी ऐतिहासिक भूमिका के कारण की जाती है कि अपने लोकतांत्रिक चरित्र के अनुसार जातिगत प्रश्नों पर न्याय करेगी।

1.2 ऐतिहासिक सन्दर्भ में दलित पत्रकारिता

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में, दलित पत्रकारिता के मकसद को सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता है। इतना जरूर कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक संदर्भ में दलित पत्रकारिता जिस सामाजिक सुधार के लिए संघर्ष कर रही थी। उस सुधार के तरीकों में औपनिवेशिक दौर के में समाज सुधारकों में मतभेद था और आज भी कई मुद्दों पर विरोधाभास है। इन संदर्भों में पत्रकारिता के विकास यात्रा में दलित पत्रकारिता को देखने समझने का प्रयास करे तो कई ऐसे बिंदु देखने को मिलते है, जो चौकाते है। दलित पत्रकारिता के संदर्भ में भारतीय पत्रकारिता में आजादी से पहले महात्मा गांधी और डा.अंबेडकर दलित पत्रकारिता के प्रमुख प्रस्थान बिंदु और प्रतीक पुरुष के रूप में नज़र आते है। दलित पत्रकारिता के ऐतिहासिक संदर्भ में गांधी और अंबेडकर दोनों ही भारतीय इतिहास के बारे में सोचते है, जाति के प्रश्नों से टकराते है और समाज को बदलना चाहते है। दलित समाज के लिए पत्रकारिता के महत्व के विषय में बाबा साहब बताते हैं कि -

"यह बहुत निराशाजनक बात है की हमारे पास संसाधनों की कमी है। धन भी नहीं है, अख़बार भी नहीं है।आज पूरे भारतवर्ष में हमारे लोग सत्ता के आधीन पीड़ित है। उनके साथ भेदभाव हो रहा है और कोई उनकी और ध्यान भी नहीं देता, यह तमाम बातें अखबारों में नहीं छपती हैं। यह एक सोची समझी

[9] श्यौराज सिंह'बेचैन' आम्बेंडकर, गांधी और दलित पत्रकारिता, आनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014, पेज न०-22

> साजिश है। जिसमें पत्रकारिता पूरी तरह शामिल है। वह सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर उठने वाली हमारी आवाज को दबा देना चाहती है।"[10]

डा.अंबेडकर ने दलित समुदाय के कुरतियों के और शोषण के विरुद्ध कई पत्रिकाएँ का संपादन किया था। जो उस समय में व्याप्त सामाजिक कुरितियों के खिलाफ एक मुखर आवाज थी। वास्तव में वह जानते थे कि दलितों को यदि अपने अधिकार मिलने चाहिए, तो उसके लिए उन्हें आपनी आवाज को बुलंद कर लोगों तक पहुचना जरूरी हैं।परंतु, उसके लिए उनके पास प्लेटफार्म नहीं था क्योंकि मुख्यधारा की पत्रकारिता डा.अंबेडकर से व उनके विचारों से, उनके मुद्दों, से नफरत करती थी। यही कारण था की डा.अंबेडकर ने स्वयं का रास्ता बनाया व पत्रिकाएं निकालना प्रारंभ किया।

डा.अंबेडकर ने 'जनता' पत्रिका 24 नवम्बर 1930 में प्रारंभ की। जो 4 फरवरी 1956 तक चली यह मराठी भाषा में निकलती थी। इसके साथ-साथ उन्होंने मूकनायक, बहिष्कृत भारत, समता और प्रबुद्ध भारत नामक अख़बारों का संपादन किया। इन पत्रों के माध्यम से वो समाज को जागृत करने का प्रयास कर रहे है जिससे समाज में सामाजिक समता का निर्माण किया जा सके। इसके बरक्स गांधी ने भी 11 फरवरी 1933 को "हरिजन" पत्र का संपादन करना प्रारंभ किया, जिसमें वो दलित समुदायों के प्रश्नों को उठाते थे। इसके साथ-साथ उन्होंने ओपिनियन, यंग इंडिया और नवजीवन का भी संपादन किया। "हरिजन" के माध्यम से वो समाज में सामाजिक एकता और बराबरी का संदेश देने की कोशिश कर रहे थे।

> गांधी कि "हरिजन" पत्रिका एक प्रयास थी, जिससे वह दलितों को यह बताने का प्रयास कर रहे थे कि दलित भी हिंदू धर्म का महत्वपूर्ण हिस्सा है। परंतु, दलित वर्ग को "हरिजन" शब्द से खासी आपत्ति थी। इस आपत्ति के कई

[10] वी.रत्नामाला, अंबेडकर और मीडिया, अनु.रजना विष्ट, सं. अनिल चमाड़िया, "जन मीडिया" वर्ष-4,अंक 39, जून 2015, नई दिल्ली, पेन न. 7

कारण थे जिनमें से एक था कि दक्षिण भारत में देवदासी[11] की संतान जिनके बाप का नाम पता नहीं होता था, उन्हें हरिजन कहा जाता था।[12]

औपनिवेशिक दौर में सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्यों से समचार पत्रों का संपादन, यह स्पष्ट करता है कि गांधी और डा.अंबेडकर दोनों की पत्रकारिता के महत्व से परिचित थे, इसके प्रभाव से पूरी तरह वाकिफ थे। अपने उद्देश्य सामाजिक समता, सामाजिक एकता और बराबरी के लिए उनकी विचारधारा और प्रयास के तरीके अलग-अलग दिखते है। इसके प्रधान कारण के रूप में यह कहा जा सकता है कि बाबा साहब ने दलित समुदायों के अनुभवों को स्वयं महसूस किया था क्योंकि वे स्वयं भी दलित थे और जाति व्यवस्था के उत्पीड़न को झेला भी था। जबकि, गांधी दलित समुदायों के उत्पीड़न के मर्म को समझने के बाद इस उत्पीड़न के विरुद्ध सामाजिक परिवर्तन की कोशिश कर रहे है।आत्म-अनुभवों और उत्पीड़न के मर्म समझने के कारण ही उनकी राजनीति भी दलित समुदायों के लिए अलग-अलग दिखती है। जहां एक तरफ़, गांधी मंदिरों में दलितों के प्रवेश से धार्मिक समानता लाना चाहते थे, तो दूसरी तरफ़, बाबा साहब दलित समुदाय के लोगों के लिए पीने के पानी के लिए संघर्ष कर रहे थे। इससे यह स्पष्ट जरूर हो जाता है कि दोनों ही महापुरूष उस दौर में जाति प्रश्नों के सवालों से टकरा भी रहे थे और

[11] ये 'देवदासी' एक हिन्दू धर्म की प्राचीन प्रथा है। भारत के कुछ क्षेत्रों में खास कर दक्षिण भारत में महिलाओं को धर्म और आस्था के नाम पर वेश्यावृत्ति के दलदल में धकेला गया। सामाजिक-पारिवारिक दबाव के चलते ये महिलाएं इस धार्मिक कुरीति का हिस्सा बनने को मजबूर हुईं। देवदासी प्रथा के अंतर्गत ऊंची जाति की महिलाएं मंदिर में खुद को समर्पित करके देवता की सेवा करती थीं। देवता को खुश करने के लिए मंदिरों में नाचती थीं। इस प्रथा में शामिल महिलाओं के साथ मंदिर के पुजारियों ने यह कहकर शारीरिक संबंध बनाने शुरू कर दिए कि इससे उनके और भगवान के बीच संपर्क स्थापित होता है। धीरे-धीरे यह उनका अधिकार बन गया, जिसको सामाजिक स्वीकार्यता भी मिल गई। उसके बाद राजाओं ने अपने महलों में देवदासियां रखने का चलन शुरू किया। मुगलकाल में, जबकि राजाओं ने महसूस किया कि इतनी संख्या में देवदासियों का पालन-पोषण करना उनके वश में नहीं है, तो देवदासियां सार्वजनिक संपत्ति बन गईं। कर्नाटक के 10 और आंध्र प्रदेश के 14 जिलों में यह प्रथा अब भी बदस्तूर जारी है। देवदासी प्रथा को लेकर कई गैर-सरकारी संगठन अपना विरोध दर्ज कराते रहे। सामान्य सामाजिक अवधारणा में देवदासी ऐसी स्त्रियों को कहते हैं, जिनका विवाह मंदिर या अन्य किसी धार्मिक प्रतिष्ठान से कर दिया जाता है। उनका काम मंदिरों की देखभाल तथा नृत्य तथा संगीत सीखना होता है। पहले समाज में इनका उच्च स्थान प्राप्त होता था, बाद में हालात बदतर हो गये। देवदासियां परंपरागत रूप से वे ब्रह्मचारी होती हैं, पर अब उन्हे पुरुषों से संभोग का अधिकार भी रहता है। यह एक अनुचित और गलत सामाजिक प्रथा है। इसका प्रचलन दक्षिण भारत में प्रधान रूप से था। बीसवीं सदी में देवदासियों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। अँगरेज़ तथा मुसलमानो ने देवदासी प्रथा को समाप्त करने की कोशिश की। तो लोगों ने इसका विरोध किया

[12] माता प्रसाद, हिंदी काव्य धारा में दलित काव्यधारा- विश्व वि. प्रकाशन, वाराणसी, 1992, पेज न०- 27

संघर्ष की राजनीति का विकास भी कर रहे थे। दोनों ही महापुरुष अपनी पत्रिकाओं द्वारा लोगों को संबोधित करते थे। निम्नलिखित वाक्या डा.अंबेडकर की पत्रिका 'जनता' का हैं-

> "13 जून 1941 को मतंग परिषद् के नेता देवीदास राव नामदेव राव कांबले ने जनता को एक पत्र लिखा। जिसमें उन्होंने कई प्रश्न उठाये 14 जून 1941 को यह पत्र डा.अंबेडकर के उत्तर के साथ छपा।
>
> इस पत्र में कुछ महत्व्पूर्ण प्रश्न उठाये थे जैसे कि -
>
> 1)महार मातंग समाज को तुच्छ व नीचा समझते है।
>
> 2)मातंग जब शादी करते है व उसमे घोड़ी पर चढ़ते हैं, तो महार उसमे अड़चने डालते है।
>
> 3)जब भी मातंग सुधार की बात करते है, महार उनका साथ नहीं देते है।
>
> 4) अछूत में शिक्षित और आगे बढ़े लोग महार है। वे स्वार्थी है, वे दूसरो को आगे बढ़ने में साथ नहीं देते, M.L.A भी इन्हीं के है।
>
> 5) जनसंख्या की दृष्टि से महार ज्यादा है। जैसे वह गैर दलित हिन्दुओं की गुलामी करते है। वैसे ही मातंग महारों की करते है।
>
> 6)महार कन्धा उचककर कहते है की डा.अंबेडकर महारों के नेता हैं। आप न्याय के पक्ष में काम करें व इस विभाजन को रोके।[13]

[13] मातंग(समाचार पत्र) 14 जून 1941 माईक्रोफिल्मस ; NMML

यह प्रश्न इस तरफ़ इशारा करते है कि कमजोर जातियां भी अपने से कमजोर जाति का शोषण करती है। यही हाल दलित समुदायों में दलित स्त्रियों का है। दलित स्त्री दो प्रकार की पितृसत्ता का बोझ उठाती है। दलितों में भी दलितों का शोषण था जो आज भी है। जो पद्सोपन चार वर्ण का हिन्दू व्यवस्था में बना है। वह स्वयं दलितों के अंतर्गत तक फैला हुआ है। दरअसल हर व्यवस्था शक्ति(power) अर्थात सत्ता से चलती है। जो भी उसमें ऊपर सत्ता में होगा या जिसके पास शक्ति होगी वह अपने से नीचे के वर्ग को पूर्ण रूप से अपने अंतर्गत रखने की कोशिश करता है। यही तब भी हो रहा था, आज भी होता हैं। आज के समय में दलितों के लिए लड़ने वाली पार्टियों के प्रश्न दलितों के समधान से हटकर, राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना हो गया है। जो समकालीन परिस्थितियों में दलितों समुदाय के लिए जरूरी भी हैं। डा.अंबेडकर इसका जवाब देते है और कहते हैं कि-

> "व्यक्ति पूजा करना गलत है। मैं समता का प्रबल समर्थक हूं, मैं न देव हूं, न महात्मा तो मेरा पूजा किया जाना गलत है। मैं ये कहते कहते थक गया हूं, परंतु महारों पर इसका कोई असर नहीं होता। मातंग मेरा चित्र नहीं पूजेंगे तो अच्छा होगा चित्र पूजन गलत है। इसमें कोई संदेह नहीं है। ब्राह्मणवाद को नष्ट करना, मेरा निश्चय है। मातंग इसमें मेरा साथ देंगे तो ये बहुत अच्छा होगा। मैं महारों का नेता हूं, ऐसा मैंने आखबारों में पढ़ा है, परंतु यह सत्य नहीं है। अंबेडकर कहते है वह काम के लिए नेता है, वह काम करना चाहते है। वह समाज सेवक नहीं है। उनके काम मिश्रित विवाह, सहभोजन के आरंभ प्रयास मात्र है।"[14]

इस प्रकार से डा.अंबेडकर का यह उत्तर दिखाता है कि जनता पत्रिका संवाद का एक स्रोत भी थी। दलित समाज के लोग अपने प्रश्न यह सोचकर भेजते थे कि कोई उनकी सुनेगा व यह

[14] श्यौराज सिंह'बेचैन' आम्बेंडकर, गांधी और दलित पत्रकारिता, आनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014, पेज न०- 43

पत्रिका उसके लिए वह कार्य करती थी, यह एक उदाहरण है। आज की पत्रकारिता को की संवाद जनता व लेखक के मध्य कितना जरुरी है।

वही गाँधी की "हरिजन" पत्रिका व उनकी पत्रकारिता पर प्रश्न उठे रहे थे, जैसे की वह अछूतों के साथ अपने लेखन द्वारा न्याय नहीं कर पा रहे थे,उनके अनुसार-

> "गाँधी "हरिजन" में सफाई मजदूरों के बारे में जब भी लिखते थे वह उनका भविष्य मैला होने में ही देख पाते थे, उससे मुक्ति में नहीं। जैसे नगरों में सीवर व्यवस्था होने से भंगियों का काम उनसे छीन जाएगा। बेरोजगार हुए भंगियों के लिए काम की व्यवस्था करना नगरपालिका का कर्तव्य है। वह यह नहीं चाहते थे कि "हरिजन" मैला छोड़े व इस काम में हीनता महसूस करें।"[15]

इसी तरह गांधी, बाबा साहब के साथ हुए संवादों के बारे में बताते हैं कि -

> "गाँधी जी लिखते है कि एक बार डॉ.अंबेडकर से बात करते हुए। उन्होंने मुझे बताया की पुलिस वाले सवर्ण जाति के है। इसलिए किस प्रकार वह उनके साथ भेदभाव करते है। उनकी मदद नहीं करते या उनकी सुनते नहीं है।,शायद ये बात सच हो इसके बाद गाँधी इसके लिए सुझाव देते है व कहते है की "धीरज से काम लेना सबसे अच्छा है। "हरिजन" आहिंसा का रास्ता नहीं देख सके तो परमात्मा से सहायता की प्रार्थना करें।"[16]

---

[15] श्यौराज सिंह'बेचैन' आंबेडकर गांधी और दलित पत्रकारिता, आनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014, पेज न०-43

[16] श्यौराज सिंह'बेचैन' आंबेडकर गांधी और दलित पत्रकारिता, आनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स(प्रा) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014, पेज न०-44

गांधी और अंबेडकर के पत्रों में अभिव्यक्त लेखों के माध्यम से भारतीय समाज में जाति प्रथा का सत्य प्रकट होता दिखता हैं। जो यह स्पष्ट करता है जाति समस्या के समाधान के लिए दोनों ही अपने पत्रकारिता के माध्यम से संघर्ष कर रहे थे। परंतु, उनके तरीकें अलग-अलग थे, जिस पर सहमति-असहमति और विरोधाभास भी देखने दोनों देखने को मिलते हैं।

गाँधी की पत्रकारिता से प्रतीत होता है कि उन्होंने एक प्रकार का सेफ्टी वाल्व बनाया था जैसे कि ए.ओ.ह्यूम ने बनाया था। भारत में उठने वाले आक्रोश को दबाने के लिए ए.ओ.ह्यूम ने कांग्रेस के गठन की बात कि ताकि लोगों के लगे की हमारे प्रतिनिधित्व के लिए कोई है। जिसके कारण उनका आक्रोश उग्र न हो। वही गाँधी ने दलितों के साथ किया दलितों के लिए एक वाल्व तयार किया जो की "हरिजन" जिसके द्वारा वह कह सके हम अछूतों को भी समाज में स्थान दे रहे है। उनके बारे में बात कर रहे हैं।

परंतु, इन दोनों के पत्रकारिता के मध्य एक छुपा हुआ तथ्य यह भी है कि औपनिवेशिक दौर में वर्ष 1920 के आस-पास दलित समुदायों में सीमित स्तर पर ही, पर पढ़े-लिखे लोगों का वर्ग सामने आ रहा था। जो दलित समुदायों के प्रश्नों को अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्त कर रहा था। इस दौर में नई अर्थव्यवथा, नए रोजगार के साधन और नई व्यवस्था के निमार्ण मसलन, स्कूल, कालेज, कोर्ट कचहरी, सरकारी दफ्तरों, नगर पालिकाओं के आने से दलित समुदायों में भी आर्थिक गतिशीलता आ रही थी। इस गतिशीलता को नियंत्रित करने के प्रयास भी हो रहे थे। इसी समय में भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद का प्रारंभ भी, कई समुदायों के सवालों को आजादी के नाम पर हाशिये पर भी फेंक रहा था। इसके प्रभाव और संघर्ष और इसपर गांधी और डा.अंबेडकर के प्रभाव एक स्वतंत्र शोध की मांग करता है।

आजाद भारत में डा.अंबेडकर के प्रयासों के बाद दलित राजनीति में कई उतार-चढाव रहे है। पैंथर आंदोलन की दलित अस्मिता की राजनीति और कांशीराम का राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करने की राजनीति दलित आंदोलन के बड़े प्रस्थान बिंदु है। इन दोनों ही दलित आंदोलनों ने डा.अंबेडकर और ज्यौंतिबा फूले परंपरा को आदर्श मानते हुए, अपने समाज के विकास के लिए

पत्रकारिता को माध्यम बनाया। क्योंकि मुख्यधारा कि पत्रकारिता दलित समाज की समस्याओं के प्रति पूर्वाग्रहों को बनाए हुई थी और अपने अंदर लोकतांत्रिक चेतना का विकास नहीं कर सकी। डा.अंबेडकर की ही भांति कांशीराम ने भी "the opressed indian" पत्रिका निकाली। वह इस बात से भली-भांति परिचित थे कि यदि उन्हें आपनी आवाज जन समुदाय (मुख्य तौर से दलित वर्ग) तक पहुंचानी है, तो उन्हें स्वयं इसके लिए रास्ता बनाना पड़ेगा। वह अपने राजनीतिक अनुभव से समझ गये थे कि मुख्यधारा की मीडिया के लिए उनका व उनसे जुड़े मुद्दों का कोई महत्व नहीं है। यही कारण था की उन्होंने स्वयं की पत्रिका का प्रारंभ किया, जिसमें वह स्वयं लिखते थे।

> "भारतीय मीडिया का नज़रिया ब्राह्मणवादी रहा है। वह इसी नज़रिये से किसी भी व्यक्ति को चाहे वह पुरुष हो या स्त्री की योग्यता को परिभाषित करता है, ये कहे की देखता है। भारतीय मीडिया डा.अंबेडकर से नफरत करता है।"[17]

स्पष्ट है कि समकालीन पत्रकारिता में दलित समस्याओं के प्रति एक विशेष नजरिया हैं। समय-समय पर देश में होने वाली राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं पर मीडिया द्वारा हर क्षेत्र के बुद्धिजीवियों की राय मांगी जाती हैं लेकिन दलित बुद्धिजीवियों, पत्रकारों, शिक्षकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को दलित मुद्दों पर बुलाया भी नहीं जाता हैं। जो मौजूदा समय में संविधान के अनूकूल भी नहीं है। दलित विषयों और समस्याओं पर मीडिया को अपनी दलित नीति को स्पष्ट और कारगर करने की आवश्यकता है।

1.3 प्रिंट मीडिया पर पूंजीवादी प्रभाव

आजादी के दो दशक के बाद तक पत्रकारिता जाति, धर्म, महिलाओं और अन्य संवेदनशील विषयों पर रूढ़िवादी तरीके से लेखन करती रही हैं। समय अन्तराल के बाद वह राजनीतिक दलों की आवाज बनकर उभरी। इसके साथ-साथ अर्थिक और व्यावसायिक दबाव के आगे पूंजीवादी व्यवस्था की तरफ़ अग्रसर हुई। इन तमाम बदलावों के मध्य पत्रकारिता अब तक के अपने

[17] कांचा ईलैया,स्टैफर्ड "इफ लक्षमण प्लेज हनुमान रोल" सितंबर, 2000. https://sabrangindia.in/article/if-laxman-plays-hanuman तारिख 12/02/2017

मानवतावादी चहरे से भटक गई। जिस वजह से पत्रकारिता अपने मध्य लोकतांत्रिक चेतना का विकास नहीं कर सकी और वह जन सरोकारी सवालों के साथ न्याय नहीं कर सकी।

इन सभी परिस्थितियों के मध्य पत्रकारिता में काम कर रहे पत्रकारों की स्तिथि बहुत बेहतर नहीं थी, जिसके कारण पत्रकारों में अवसरवादी होने की भावना का भी विकास देखने को मिलती हैं। पत्रकारों की स्थिति के बारे में वर्ष 1950 में वेज बोर्ड रिपोर्ट विस्तार से चर्चा करती हैं और बताती हैं कि -

> "भारतीय सरकार की कार्यप्रणाली का हिस्सा थी जिसके तहत मजदूर वर्ग के लिए वेतन निर्धारित होता है। इसे संचार माध्यम अर्थात सम्पूर्ण मीडिया पर भी लागू किया गया। वर्ष 1950 में वेज बोर्ड रिपोर्ट का लक्ष्य यह था कि समान्य तौर पर ज्यादा से ज्यादा लोगों को नौकरी मिलेगी जो की समाजवादी विचारधारा की सोच थी जो की नेहरु जी की विचारधारा से प्रभावित थी। इसमें यह निर्धारित था की पूंजीवाद का प्रभाव होगा। परंतु, नियंत्रित पूंजीवाद नहीं होगा"।[18]

परंतु, वेज बोर्ड की अवधारणा के अनुसार कुछ भी नहीं सका। क्योंकि अधिक मुनाफा कमाने के होड़ में पूंजीवाद ने अपनी सभी सीमाएं तोड़कर, आगे बढ़ी। आज पत्रकारिता व्यावसायिकता के होड़ में जनसरोकारी न होकर, पूर्णत: व्यावसायी है। एन.राम पत्रकारिता के हो रहे बदलावों के बारे में बताते हैं कि-

> "वर्ष 1990 के लगभग भारत में आर्थिक परिवर्तन हो रहे थे। सभी व्यवसाय बदल रहे थे उदारवाद, निजीकरण, भूमंडलीकरण भारत में दस्तक दे चूका था। वही मीडिया भी बदल रहा था व प्रिंट मीडिया पर भी निजी क्षेत्रों का प्रभाव बढ़ रहा था। विकसित देशो में मीडिया एक बाज़ार की तरह कार्य करती है। भारत में भी कुछ उसी प्रकार का चलन प्रारंभ हुआ है। मीडिया पूंजीवाद की तरफ बढ़

[18] रोबिन जेफ्री,भारत मे समाचारपत्र क्रांति,आनुवाद डॉ सत्यकामभारतीय जनसंचार संस्थान,नई दिल्ली,2004 पेज न०15

रही हैं, प्रतियोगिता कर रही है, उग्र बाजारिक नीतियां आपना रही हैं।अपने लोभ व लाभ की पूर्ति के लिए कार्य कर रही है।"[19]

इन बदलावों के साथ-साथ सूचना- प्रौद्योगिकी के विकास ने पत्रकारिता को "मीडिया" शब्द में बदल दिया। जिसने व्यावसायिकता के क्षेत्र में आगे बढ़कर सफलता हासिल की। वह केवल समाचार पत्र तक ही सीमित नहीं रही। वह टेलीग्राफ, टेलीफोन के माध्यम तक ही सीमित नहीं रही। रेडियो और टेलीविजन को इंटरनेट की गति प्रदान की, जिसने लोकतंत्र को गतिशीलता प्रदान किया। सूचना के नए माध्यमों ने पत्रकारिता को व्यावसायिक मजबूती तो दी, साथ ही साथ जनसरोकारी उम्मीदों को भी नई उम्मीद प्रदान की। इन नव-परिस्थितियों में भारतीय पत्रकारिता में बदलावों का मूल्यांकन करते हुए रामशरण जोशी, "मीडिया विमर्श" में बताते हैं कि-

"क्षेत्रीय प्रेस मालिक आदर्श व मूल्य के प्रति प्रतिबद्ध हुआ करते थे। परंतु, वह भी अब महानगरीय प्रेस की तरह पूंजीवाद की चपेट में आ गए है। अब प्रतिबद्धता एंव प्रोफेशनलिज्म के स्थान पर 'धंधे' को प्राथमिकता दी जा रही है। पत्रकारिता का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष 'धन्धाकरण' किया जा रहा है। जब धन्धाकरण की आंधी चल ही रही है तो उसमे समाजिक सरोकार, समाजिक उतरदायित्व, समाजिक बोध, जैसे शब्दों का नूर स्वत: ही धुंधला पड जाता है।"[20]

आज के समय में दूरदर्शन भी अपने मूल्यों से हटता प्रतीत होता हैं और अख़बारों में खबरें प्रोडक्ट की तरह पेश की जाती हैं। अब सूचनाओं का नया रूप "खुशखबरी" भी हैं। जैसे कि कोई साबुन या टेलकम पाउडर होता है। परंतु, विचारणीय प्रश्न यह है की क्या समाचार पत्रों द्वारा ख़बरों को प्रोडक्ट के रूप में परिभाषित करना सही हैं क्या ऐसा किया जाना चाहिए?

---

[19] एन.राम.,"द चैंजिंग रोल आंफ द न्यूज मीडिया इन कन्टेपरी इंडिया".इन इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 72वां सेसन, पंजाबी यून्वर्सिटी, 2011. पेज न०- 5-6

[20] रामशरण जोशी, "मीडिया विमर्श" ,सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली,1999 पेज न०- 28

संचार माध्यम मनुष्यों के जीवन में सकारात्मक या नकारात्मक दोनों तरह से प्रभावित करती हैं, जबकि प्रोडक्ट तो निर्जीव है, वह लोगों को लुभा सकती है। जीवन में प्रभाव पैदा नहीं कर सकती, उनका प्रभाव छोटे समय के लिए होता है। जबकि खबरें लम्बे समय के लिए प्रभाव डालती हैं बल्कि विचारों का निर्माण भी करती हैं। इसलिए जरुरी है कि संचार माध्यम अपनी जिम्मेदारी का सकारात्मक रूप से निर्वाह करें।

पी.साईनाथ उदारीकरण के बाद मीडिया के के पूंजीवादी चरित्र का विवरण पेश करते हुए, अपने लेख "*Disconnect between Mass Media and Mass Reality*" में लिखते हैं कि-

> "प्रिंट मीडिया लाभ के लिए कार्य करना प्रारंभ कर चुकी है। इसी कारण वह पूंजीवाद से प्रभावित होती नज़र आती है। मीडिया व मार्किट वृहत स्तर पर स्टॉक मार्किट से जुड़ गए हैं। लगभग वर्ष 2002 में मीडिया क्षेत्र में प्राइवेट ट्रीटी प्रारंभ हुई जो की सुनने में किसी प्रकार की दो देशों के मध्य हुई राजनितिक संधि लगती हैं। मीडिया क्षेत्र में यह एक मीडिया हाउस का दूसरी बड़ी कंपनी के साथ की गयी संधि थी जिसके तहत मीडिया हाउस को उस कंपनी के बारे में सकारात्मक खबरें ही छापनी थी व इसके बदले में कंपनी उनको 7% से 10% शेयर्स देते है।"[21]

यदि अख़बार ख़बरो की बजाए वह छापेंगे जो की उनको लाभ पहुचाने वाली कंपनी चाहती है,जो वास्तव में सच से कोसों दूर होगा। तो यह एक प्रकार से लोगों के साथ छल है क्योंकि आम व्यक्ति जो पढ़ता है वही सच मानता है। वास्तव में अख़बार जनता की सोचने समझने की शक्ति के साथ खेलते हुए नजर आ रहे है। इस संदर्भ में प्रणजांय गुहा ठाकुरता बताते हैं कि -

> मीडिया को लगभग 10% लाभ विज्ञापन व प्रत्याभूति (sponsorship) से होती है। तो वह इन्हें भी लोगों के सामने सच की तरह पेश करते हैं, चूँकि यह आत्यधिक विश्वश्निय क्षेत्र है। तो आम जनता इन पर भरोसा भी करती है। मीडिया कहीं न कहीं लोगों के बुद्धिमता को चुनौती देती नज़र आ रही है। अब भ्रष्टाचार संस्थात्मक हो गया है, जैसे की मीडिया कोई तस्वीर लोगों के सामने

[21]पी.साईनाथ, डिशकनेक्टिग बीटवीन मांस मीडिया एंड रियालइटी, सं. बुरोशिवा दास गुप्ता, मीडिया, मार्केट एंड डेमोक्रेशी, इस्टूच्यूट आंफ डेवलपमेंट स्टडी, कोलकत्ता, प्रोग्रेसिव पब्लिकेशन,2011, पेज न०- 21

> ऐसे प्रदर्शित करता है। जैसे वह सबसे खुबसूरत स्त्री हो परंतु यह सत्य नहीं है। उसको खुबसूरत प्रदर्शित करने के लिए पैसे मिलते है। वह लोगों के सामने भ्रम को सच बनाकर प्रदर्शित करते है।[22]

स्पष्ट है कि उदारीकरण के दौर में व्यावसायिकता के दवाब में मीडिया अपनी नैतिक जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं हो सकता है। व्यावसायिकता के दौर में भी, उसे जनसरोकारी होने की जरूरत है। शर्मिला टेगौर बताती हैं कि -

> "इसलिए आज हम मीडिया क्षेत्र को मुक्त नहीं कह सकते, क्योंकि यह प्रभावित है लाभ व लोभ से, पूंजीवाद से। परंतु, फिर भी इसके जनपक्षीय चरित्र के कारण हम यह मानने से इंकार नहीं कर सकते की मीडिया लोकतंत्र का ऑक्सीजन है।"[23]

इसी कारण इसके कुछ कर्तव्य निर्धारित होने चाहिए है,जो नैतिकता पर आधारित होते है। परंतु, जरुरी नहीं हर कोई उसका पालन करें। मीडिया को कोई प्रभावित कर सकता है तो वह केवल सरकार नहीं है वह है बाज़ार जो राजनितिक पार्टी पैसा देगी वह उनका प्रचार करेंगी। राजनितिक पार्टियाँ भी मीडिया के लिए बाज़ार का ही कार्य करती है। किसी नेता की छवि को बनाना व बिगाड़ना मीडिया के हाथ में है। आज के समय में पार्टिया यह काम पैसे देकर बखूबी कराती है, मीडिया करती भी है। जबकि यह लोकतंत्र पर सबसे बड़ा प्रहार है। जिससे आम जनता को भ्रमित किया जाता है व यह मीडिया अपने लाभ मात्र के लिए करती हैं। जिसके कारण जनता गलत सदस्य का चुनाव करती हैं इसके लिए जरुरी है की जनता जो भी पढ़ रही है या सुन रही है उसके प्रति जागरूक व सक्रिय रहे।

---

[22] प्रणजांय गुहा ठाकुरता, पेड न्यूज एंड टार्फरमेशन आंफ मीडिया, सं. बुरोशिवा दासगुप्ता, मार्किट मीडिया, एंड डेमोक्रेसी, प्रोग्रेसिव पब्लिशरस ,2011|, पेज न०- 26

[23] शर्मिला टैगोर, हाऊ टू चैलेज द रिडक्टीब नोशन आंफ मेन स्ट्रीम जर्नलिज्म, सं. बुरोशिवा दासगुप्ता, मार्किट मीडिया, एंड डेमोक्रेसी, प्रोग्रेसिव पब्लिशरस ,2011|, पेज न०- 29

विभिन्न पुस्तकों व शोधों से ज्ञात होता हैं कि प्रिंट मीडिया का चरित्र पूंजीवादी हो रहा है। परंतु, एक और आरोप प्रिंट मीडिया पर लगता आया है कि वह पितृसत्तात्मक भी है। स्वयं इन संस्थानों में महिलाओं की सहभागिता व कार्य करने की परिस्थितियां कुछ खासा अच्छी नहीं है। महिलाओं के संदर्भ में उनकी समस्याओं के अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करें तो नई तस्वीर उभरती हैं। मीडिया ने महिलाओं की आधुनिक और पारंपरिक दोनों ही छवियों को स्थापित करने का काम किया है और महिलाओं के समस्याओं को एकरूपता से देखने का प्रयास किया, जबकि वह बहुपक्षीय मूल्यांकन की मांग करती हैं।

1.4 प्रिंट मीडिया में महिलाओं की भागीदारी व उनसे संबंधित मुद्दे

"स्टेटस ऑफ़ वीमेन जर्नलिस्ट इन प्रिंट मीडिया" रिपोर्ट का प्रारंभ राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा किया गया था। इस रिपोर्ट के पीछे महत्वपूर्ण कारण था मीडिया क्षेत्र में महिला पत्रकारों की स्थिति, परिस्थितियों का स्तर को समझना। जिसका संचालन Press Institute of India((PII) द्वारा किया गया था। इस रिपोर्ट में प्रश्नावली के माध्यम से देश के सभी राज्यों के प्रिंट मीडिया हाउस में काम करने वाली महिलाओं से सवाल किये गए और 410 महिलाओं ने जवाब दिए। जिसमें मुख्य मुद्दे इस प्रकार से उभरे-

> "महिलाएं स्थायी कर्मचारी नहीं है। उन्हें दैनिक वेतन 1500 से 3000 के आधार पर काम पर रखा जाता है उसके पीछे कारण है निजीकरण। जब से निजीकरण प्रारंभ हुआ है कॉन्ट्रैक्ट सिस्टम प्रारंभ हो गया है। जिसका इस्तेमाल मीडिया क्षेत्र ने महिलाओं के खिलाफ एक हथियार की तरह प्रयोग किया है। लोगों को अभी तक लगता है की महिलाएं मीडिया क्षेत्र के लिए प्रोफेशनल नहीं होती। महिलाओं को बहुत सी समस्याएं होती है-जैसे सुरक्षा, प्रसूति छुट्टी, घरेलू जिम्मेदारी, नाईट ड्यूटी। इनको महिलाओं के खिलाफ ही प्रयोग किया जाता रहा हैं। महिलाओं के लिए मीडिया क्षेत्र में एक रूढ़ीवादी सोच बनी हुई है कि वह कुछ ही बिट[24] पर काम कर सकती हैं। जो महिलाओं से संबधित खबरें

[24] बिट-बिट रिपोर्टिंग का अर्थ है किसी खास मुद्दे(issue) पर पत्रकार का विशेषज्ञ होना व उस अधार पर पत्रकार की बिट निर्धारित होती है|

> आती हैं। मीडिया क्षेत्र यह महिलाओं की समाज में बनी रूढ़िवादी सोच को ही दर्शाता है। प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में महिलाओं को पदोन्नती की आत्यधिक समस्याएं हैं। इसके कारण कई महिलाओं को शारीरिक उत्पीड़न से भी गुजरना पड़ता हैं। यदि वह इसके लिए आवाज उठाती है तो उन्हें काम से निकल दिया जाता है या डराया जाता है क्योंकि वह स्थायी पद पर नही होती"।[25]

परंतु, इसके बावजूद कई प्रिंट मीडिया हाउस ने इस रूढ़िवादी सोच को चुनौती दी है। जैसे की "आजकल" अख़बार (1981) में गौर किशोरे घोष द्वारा प्रारंभ किया गया था, उन्होंने हर उस सोच को चुनौती दी, जो महिला पत्रकारों को दायरे में बांधती है। घोष ने सबसे अधिक महिला पत्रकारों को नौकरियां दी, उन्हें नाईट ड्यूटी दी गयी, हर वो बीट दी, जिनपर पुरुष अपना अधिकार समझते है। इस क्षेत्र के लोगों को महिलाओं के प्रति जो गलतफहमी थी कि महिलाएं कई प्रकार के कार्य नहीं कर सकती या केवल कुछ दायरों में रहकर ही कार्य कर सकती है। गौर किशोर घोष व महिला पत्रकारों ने मिलकर वह गलत साबित किया।[26] यह रिपोर्ट प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में वृहत स्तर पर लैंगिक भेदभाव को दिखाता है।

International Federation of Journalism 2015 रिपोर्ट में आयी थी, रिपोर्ट 90 के बाद के दशक में होने वाले परिवर्तनों की बात करती है। यह रिपोर्ट कुछ नकारात्मक पहलू के साथ कई सकारात्मक पहलूओं पर नज़र डालती हैं। यह दिखाती है की निजी क्षेत्रो का बहुत विकास हुआ है हालांकि यह भी सच है की राजनेताओं ने अपने न्यूज़ चैनल व अख़बार खोल लिए है जिसके कारण वह जनता के समक्ष अपनी सकारात्मक छवि का निर्माण कर सके।परंतु, यह रिपोर्ट बताती है की इसके साथ-साथ निजी क्षेत्रों के विकास से इसमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ी हैं, पत्रकारों का शिक्षा का दर बढ़ी हैं व महिलाओं के कार्य करने की परिस्थितियों में भी सुधार हुआ हैं।[27]

---

[25] National comission for women report, 2004, pub by Press Institute of India.New delhi.

[26] वही से, National comission for women report, 2004, pub by Press Institute of India.New delhi.

[27] http://www.ifj.org/uploads/media/INDIA.pdf

हालांकि देखने वाली बात हो सकती है कि महिलाओं की बढ़ती हुई भागीदारी के बाद महिलाओं की समस्याओं पर जो उनके द्वारा लेख लिखे जा रहे हैं या खबरें आ रही हैं वह कितनी महिलाओ की समस्याओं के प्रति न्याय करती हैं। क्योंकि महिलाओं में भी विभिन्नताएं है दूसरा महिलायें जो अख़बारों में लिख रही हैं उसके पीछे पूरा समूह कार्य करता है जिसका दवाब महिला पत्रकारों पर होता है।

"Womens And Media" में कमला भसीन व बीना अग्रवाल, केवल महिला पत्रकारिता संस्थान में कमियों पर पत्रकारों की समस्याओ पर ही बात नहीं करती। इसके साथ-साथ उसके लिए उपाय भी बताती है कि किस प्रकार स्थिति में सुधार हो सकता है। कमला भसीन समाजीकरण की प्रक्रिया के आधार पर मीडिया में स्त्री-पुरुष के मध्य कार्य विभाजन का मूल्यांकन करते हुए बताती है कि-

> मीडिया का क्षेत्र आम लोगों की सोच से विपरीत है साधारणत हम मानते है कि मीडिया उच्च वर्ग, बुद्धिमान व समानता पर आधारित है इसलिए वहां भेदभाव नहीं होगा। परंतु, यह सत्य नहीं है मीडिया क्षेत्र पूर्ण रूप से पक्षपातपूर्ण है। हमारे समाजिक मूल्यों की जो की एक बच्चे को बड़े होते वक़्त दिये जाते हैं एक परिवार किस प्रकार से बच्चे को बड़ा करता है उसके लिए किस प्रकार के संस्कृतिक मूल्य होगें। उसमे मीडिया एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है किताबें, कहानियां, खिलोने बच्चों को बचपन से सिखाना प्रारंभ कर देते हैं।[28]

हमारा समाजीकरण बच्चों को बचपन से ही दो भागों में बांट देता है, यदि वह लड़का है तो उसको केवल इसी प्रकार के खिलोने से खेलना है या ऐसे रहना है आगे उसको घर का मुखिया बनना है तो उसके कर्तव्य क्या होंगे उसे पुरुषाथ कैसे बनाये रखना है? वही लड़की को खिलौने के चयन से बताया जाता है कि उसे घर की जिम्मेदारियां निभानी है या उसे तेज हंसना नहीं हैं, लोगों के सामने कैसे जाना है? कपड़े कैसे पहनने है? लड़कियों के कपड़ो तक का चयन उनके घरवाले करते है यहां तक की रंगों को भी विभाजित कर दिया जाता है कि लड़का नीला रंग ही

[28]कमला भसीन, विमेन, डेवलपमेंट एंड मीडिया, सं. कमला भसीन और बीना अग्रवाल, विमेन एंड मीडिया: ऊनेलेसिस अटरनेटिव एंड एक्शन, काली फांर विमेन, नई दिल्ली, 1984. पेन न०-13-14

पसंद करेंगा व लड़की है तो गुलाबी। मीडिया संस्थान में स्त्री-पुरुष के बीच कार्यों का विभाजन भी इस आधार पर देखने को मिलता है।

इसके साथ-साथ किताबों में महिलाओं की भूमिका जिस प्रकार की होती है वह बचपन से ही बच्चों के लिए भूमिका निर्धारित करने का कार्य करती है जो कहीं न कहीं बच्चो को बड़ा करते वक़्त सांस्कृतिक रूप से यह सिखाने की कोशिश करता है कि एक स्त्री के क्या कार्य है व एक पुरुष के क्या कार्य होते है। कुर्सी पर सदैव पुरुष बैठेगा चाय की चुस्की लेते हुए, अख़बार पढ़ते हुए या ब्रीफकेस लेकर कार्यालय जाते हुए इस प्रकार के चित्र जो बड़े होते वक़्त बच्चों को देखने को मिलते है। वह बच्चों को यह बताते है कि बड़े होकर उनको किस प्रकार की या क्या भूमिका निभानी है। स्पष्ट है कि समाज में मौजूद विसंगतियों का निमार्ण हम जाने-अनजाने में स्वयं करते है।

यदि हम अख़बारों की बात करें तो महिलाओं व दलितों से संबंधित ख़बरो को अख़बार में जगह बनाने के लिए एक बड़ा द्वंध लड़ना पड़ता है, जिसकी चर्चा सुजाता मधोक करती है -

> "किस प्रकार महिलाओं से संबंधित ख़बर को अख़बार में जगह मिलती हैं व कहां मिलती है? किस प्रकार की ख़बर है यह तय करता है की उसका स्पेस क्या होगा व दहेज़ प्रथा, शारीरिक उत्पीड़न, रेप आदि जैसी ख़बर को वह प्रिंट मीडिया हाउस किस प्रकार प्रतिनिधित्व या लिखता है।"[29]

यदि खेल क्षेत्र में महिलाओं के नाम लिए जाते हैं इन अख़बारों में तो वह उन खिलाड़ियों की खेल क्षमता की बात नहीं करते, बात होती है उनकी छोटी स्कर्ट की या अंदरूनी कपड़ो की बात की जाती है। उनकी समस्याओं पर लिखी जाने वाले अधिकांश संपादकीयों में उनको ही जिम्मेदार बनाने की कोशिश अधिक दिखती है।

[29] सुजाता मधोक, स्टग्लिग फांर स्पेस, सं. कमला भसीन और बीना अग्रवाल, विमेन एंड मीडिया: ऍनेलेसिस अटरनेटिव एंड एक्शन, काली फांर विमेन, नई दिल्ली, 1984. पेज न०-19-25

न्यूज़ मीडिया में महिलाओं के प्रति जो खबरें आती है वह एक खास प्रकार से निर्माण की जाति है "हूज न्यूज" उसका अन्वेषण करती हैं-

> "महिला आंदोलन अपने चरम पर था जिसे कोई भी संस्थान महिलाओं को नजर अंदाज नहीं कर सकती थी। इसमे पत्रकारिता मुख्य क्षेत्र था क्योंकि वहां से जो ख़बरें आती है वह महिलाओं की समस्याओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। दूसरा, आर्थिक रुप से भारत में इतना बदलाव हो रहा था जिसमे महिलाओं की समस्याएं प्रभावित हो रही थी। ऐसे में महिलाओं से संबंधित मुद्दों को मीडिया द्वारा कवर करना जरुरी था क्योंकि इन बदलाव में महिलाओं की भागीदारी तेजी से बढ़ रही थी। दहेज प्रथा, सती प्रथा, बलात्कार, मुस्लिम महिलाओं के अधिकार, लैंगिक चुनाव, यह मुख्य मुद्दे थे। उस समय इसके बारे में मीडिया जिस प्रकार से लिख रहा था वह प्रक्रिया अलग थी।"[30]

कल्पना शर्मा अपनी पुस्तक "मिस्सिंग द हाफ स्टोरी" में समाज के उस हिस्से की बात करती है जिसे अनदेखा किया गया है या ये कहे की जिसे नजरअंदाज किया गया है, वह हिस्सा है महिलाएं। लेखिका बताती है की हर पत्रकार का एक सामाजिक पृष्ठभूमि होती है जिससे वह जमीनी स्तर पर जुड़े हुए होते है वह कही न कही एक सामाजिक बोझ लेकर चलते है जिससे वह जुड़े होते है या ये कहे की objevtive(विषय) पत्रकारिता कुछ नहीं होती। पत्रकार कुछ हद तक वही लिखते है जो उनके अंतर्गत छुपा हुआ होता है। कल्पना शर्मा बताती है की पत्रकारिता के क्षेत्र में एक प्रकार का पदसोपान है जहां लैंगिक भेदभाव साफ़ देखा जाता है। जो महिलाये इस भेदभाव को स्वीकार कर लेती है वह इसमें फिट हो जाती है ओर आवाज उठती है उन्हें इस क्षेत्र में कोई स्थान नहीं मिलता। यही कारण है की पत्रकारिता के क्षेत्र से समाज का एक भाग गायब है। जब तक हम इस भाग का नज़रिया नहीं समझेंगे, कहानी आधूरी ही नज़र आएगी और रहेगी। कल्पना शर्मा महिलाओं की भूमिका के महत्व को समझते हुए बताती हैं -

> "gendered lens" अत्यधिक महत्वपूर्ण है किसी भी घटना, क्षेत्र की पूर्ण जानकारी के लिए जरुरी है की उसको gendered lens के द्वारा समझा जाये।

[30] अमू जोसेफ एंड कल्पना शर्मा, हूज? न्यूज, द मीडिया एंड वोमेन्स इश्यू, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994 पेज न०- 5-10

> क्योंकि यह किसी भी चीज को समझने के लिए एक बारीक नज़रिया प्रस्तुत करती हैं।[31]

परंतु, यह हमें दीखता नहीं है जैसे की यदि बात करें व्यावसायिक पत्रकारिता की तो उसमें एक सफल व्यक्ति पुरुष ही दिखाया जाता है जो भी व्यवसाय से जुड़ी ख़बर होती है वो पुरुषो के आसपास ही घूमती है। जबकि महिलाएं हर क्षेत्र में कार्यरत है व एक सफल भूमिका निभा रही है। देश की आर्थव्यवस्था में महिलायों का एक महत्वपूर्ण योगदान है परंतु फिर भी इस क्षेत्र महिलाओं से संबंधित कोई भी कहानी सामने नहीं आती है। क्योंकि वह इनसे संबंधित कहानी सामने लाना नहीं चाहते। महिलाओं के "अदृश्य" होने का क्या कारण है? कल्पना शर्मा महिलाओं की पत्रकारिता में अदृश्यता को पत्रकारिता का ही एक स्वरुप बताती है। वह कहती हैं कि -

> "पत्रकारों के लिए "gender lens" अत्यंत ही महत्व्पूर्ण है, जब तक हर परिस्थिति, घटना, को इस lens के द्वारा नही देखा जाएगा हमें सब कुछ अधुरा नजर आयेगा इसलिए जरुरी है की महिलाओं व् उनके नजरिये के प्रति संवेदनशील बने।"[32]

रमा झा, *वीमेन एंड इंडियन मीडिया* पुस्तक में लिखती हैं कि-

> "ऐतिहासिक परिदृष्य में महिलाओं की भूमिका मीडिया के क्षेत्र में देखे तो पाएँगे कि महिलाओं का प्रवेश देर से हुआ। 19वीं और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में हमें महिलाओं को स्थायी प्रेस में भागीदारी देखने को मिलती है। यदि हमें महिलाओं के हिस्से की सामाजिक व राजनीतिक परिदृश्य को समझना है तो हमें महिलाओं को चार दशक वर्ष 1950 से 1990 के बीच में देखना होगा।"[33]

आजाद भारत में आजादी के दो दशक के बाद वर्ष 1975 को संयुक्त राष्ट्र ने महिला वर्ष घोषित किया। इससे विभिन्न देशों में उठ रही महिला आधिकारों की आवाज को समर्थन मिला। जहां

---

[31] कल्पना शर्मा, मीसिग हाफ द स्टोरी, जर्नलिज्म एज इफ जेंडर मैंटर, जुबान, नई दिल्ली, 2010 पेज न०- 2-10

[32] वहीं

[33] रामा झा, विमेन्स एंड द इंडियन प्रिंट मीडिया: पोटरेयम एंड परफोरमेस, चाणक्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पेज न०-2

एक तरफ़ महिलाओं से संबंधित आंदोलन चल रहे थे। विश्व भर मे महिला अधिकारों की मांग हो रही थी। वही सभी देशों ने सकारात्मकता दिखाते हुए संयुक्त राष्ट्र के इस फैसले को अपनाया। भारत में इसका प्रभाव यह पड़ा की जो महिला संबंधित गुट थे वह और सक्रिय हो गई। मीडिया भी महिला संबंधित मुद्दों को महत्व देने लगी, उन्हें गंभीरता से लेने लगी। खास मुद्दा था की महिलाएं विकास की प्रक्रिया में कहां है वह इस प्रक्रिया में कितना साथ है। दूसरी, कितनी समानता उन्हें मिल पाई है।

इन दवाबों के बाद भी भारतीय मीडिया महिलाओं के अभिव्यक्ति के स्तर पर कुछ बदलाव हुई। परंतु, मीडिया महिलाओं के रूढ़िवादी छवि से मुक्त नहीं हो सकी है जो अभी भी बनी हुई है। उनके अनुसार महिला कभी भी ज्ञान उत्सर्जन का स्रोत नहीं हो सकती वह केवल पुरुष की आज्ञा पालन व उनका क्रोध सहने के लिए ही बनी है। पुरुष पत्रकार ही अधिकतर अख़बारों में महिला विषयों पर लेखन कर रहे हैं। लेखों में उनका लेखन इस तरह का होता है कि वह महिलाओं को ही कठघरे में खड़ा करते है जिसका मूल्यांकन पाठक वर्ग भी नहीं कर पाते है। हालांकि पाठक भी थोड़े सचेत हुए है पर वो अभी काफी सीमित स्तर पर ही है।

परंतु, सच यह है कि पत्रकारिता जिन मुद्दों से महिलाओं को जोड़ तो रही है। परंतु, पुरुष पत्रकार भी कहीं न कहीं भेदभाव पूर्ण भूमिका निभा रहे है। वह इन मुद्दों को दिखाते तो है परंतु उनका नज़रिया महिला संबंधित न होकर किसी और मुद्दे से जोड़ता जैसे की धर्म, प्रथाएं भाषा आदि।

> "burn baby burn" एक अख़बार में दहेज़ पीडित पर लिखे लेख का शीर्षक है - blitz इस लेख में लिखा गया था की जब तक महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होंगी ये होता रहेगा।"[34]

गुजरात रेप केस(1989) -

[34] सुजाता मधोक, स्टग्लिग फांर स्पेस, सं. कमला भसीन और बीना अग्रवाल, विमेन एंड मीडिया: ऍनेलेसिस अटरनेटिव एंड एक्शन, काली फांर विमेन, नई दिल्ली, 1984. पेज न०-19-2

> "इस मुद्दे पर जहां पत्रकारिता के क्षेत्र में संवेदनशीलता होनी चाहिए थी। वही यह हिंदी व अंग्रेजी पत्रकारिता के लिए भाषा का आखाडा बन गया था किसी ने भी इस केस को इंसानियत या पीडिता के दर्द के साथ न जोड़कर अपने लिए ख़बर बनांने की दोड़ में लग गए कि कौन किस भाषा का अख़बार इससे कितना चटपटा करके दिखा सकता है|"[35]

रिपोर्ट बताती हैं कि-

> "43% विश्व का अनाज महिलाएं उगती है।परंतु, भारतीय मीडिया में हमेंशा जब भी कृषि की बात आती है तो केवल किसान पुरुष की बात होती है। कभी भी किसी स्त्री कृषि का की बात नही होती जबकि भारत में महिलाएं के बिना कृषि संभव ही नही है।"[36]

परंतु, पत्रकारिता द्वारा कभी भी इन महिलाओं से संबंधित प्रश्नों को न्यायपूर्वक नहीं उठाया गया। जैसे कि लेख Burn baby burn का शीर्षक व पत्रकार का यह घोषित कर देना था कि जब तक महिलाएं आत्मनिर्भर नहीं होगी ऐसा होता रहेगा अत्यंत ही निराशाजनक था। क्योंकि यह महिलाओं के दर्द को उजागर नहीं करता। दहेज़ प्रथा को समाप्त की बात नहीं की गयी। 90 के बाद महिलाओं की भागीदारी बढ़ी हैं, वह आत्मनिर्भर है। परंतु, आज भी दहेज़ के कारण महिलाएं आत्महत्या करती हैं। उसी प्रकार बलात्कार की ख़बरो को किस प्रकार चटपटा बनाया जाये अपनी भाषा द्वारा इसका प्रयास किया जाता है। महिलाएं सबसे ज्यादा खेती करती है परंतु कभी किसी अख़बार में महिला किसान के ऊपर लेख नहीं लिखा, ना ही महिला किसान की बात की जाती है। शाह बनो केस (1986) में पूरी मीडिया ने धर्म की बात की न की उस महिला के

[35] रामा झा, विमेन्स एंड द इंडियन प्रिंट मीडिया: पोटरेयम एंड परफोरमेस, चाणक्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पेज न०-2
[36] . http://www.fao.org/docrep/013/am307e/am307e00.pdf तारीक 22/07/2017

आधिकारों की जबकि उषा राइ जो की स्वयं एक पत्रकार है वह मानती है की शाह बनो केस में जो महिला पत्रकारों का नजरिया था वह पुरुष पत्रकारों से अलग था।[37]

मीडिया केवल हमारे समाज को प्रदर्शित ही नहीं करती है बल्कि प्रभावित भी करती है। मीडिया को इस नैतिकता की जिम्मेदारी से पीछे हटते ही देखा जा सकता है। प्रश्न यह उठता है कि महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता कब बढ़ेगी? जो छवि बनी हुई है वह कब बदलेगी, यह तभी संभव लगता है जब मीडिया में महिला पत्रकारों की भूमिका बढेगी। जरुरी यह है कि जब वह इस क्षेत्र में आएंगी। उन्हें वह बीट दी जाएगी जिनपर पुरुषो का वर्चस्व माना जाता है तो किस प्रकार की तस्वीर पेश करती हैं और किस प्रकार के मुद्दों को उठाती है।

नंदिनी मेहता जो की सीनियर एडिटर है इंडियन एक्सप्रेस में बताती हैं कि-

> "पत्रकारिता में महिलाओं से संबंधित मुद्दों के लिए एक अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाता है, जो कि सरल नहीं होती। जिसे हमारे पाठक उतनी अच्छी प्रकार से समझने में समर्थ नही होते। जिस कारण वह उन मुद्दों की गहराई समझ ही नहीं पाते, न ही पत्रकार ऐसा चाहते है की पाठक उस गहराई तक जाये। उस घटना से संबंधी सच्चाई को गहराई से समझे। वास्तव में यह पत्रकार अपनी कुटिल भाषा द्वारा पाठक व घटना से संबंधित पीडिता के मध्य की सच्चाई को ख़त्म कर देते है। पाठक जो उसके बारे में समझना चाहता है। घटना जो की वास्तविकता की मांग करती है, पत्रकार दोनों के साथ छल करते है।"[38]

महिला पत्रकारों का यह अनुभव पत्रकारिता के क्षेत्र में रूकावटे या परेशानियां है कि चर्चा करती है जिसको पार करके सफलतापूर्वक अपना मुकाम बनाया है। पत्रकारिता में प्रतिस्पर्धा होने का कारण महिलाओं की भागीदारी तो बढ़ी है। परंतु, वह महिलाएं एक खास वर्ग से संबंधित है अर्थात जो महिलाएं इस क्षेत्र में है वह उच्च वर्गीय, व उच्च जाति हिन्दू धर्म से संबंधित होती

[37] रामा झा, विमेन्स एंड द इंडियन प्रिंट मीडिया: पोटरेयम एंड परफोरमेस, चाणक्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पेज न० 33

[38] रामा झा, विमेन्स एंड द इंडियन प्रिंट मीडिया: पोटरेयम एंड परफोरमेस, चाणक्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1992, पेज न०- 37

है। लिंग के साथ-साथ वर्ग पत्रकारिता के विषयों और महिलाओं के समस्याओं को श्रेणीबद्ध विभाजन करता है। महिलाएं उस वर्ग से आ रही है जो फायदे की स्थिति में है इसलिए यह कह सकते है की निम्न जाति (दलित आदिवासी आदि) व वर्ग की महिलाएं नगण्य है।

1.5 प्रिंट मीडिया में दलितों की भूमिका

प्रिंट मीडिया में दलितों की भूमिका पर बहुत पहले से सवाल उठते रहे हैं। दलित संचार माध्यमों के पूरे क्षेत्र में कहां है? यह प्रश्न प्रारंभ से शोध का हिस्सा बना हुआ है। परंतु, प्रिंट मीडिया में दलितों का ना होना, स्वयं संस्थान के लोकतांत्रिक चरित्र पर सवाल खड़ा करती है?

रांबिन जेफ्री हिंदी पत्रकारिता में दलित समुदायों के समाचारों और दलित भागीदारी के सवालों के विषय में अपनी किताब "India's newspaper revolution" में पत्रकारिता में दलितों का प्रतिनिधित्व व दलितों से संबधित खबरें किस प्रकार से छपती है के बारे में बात करते है, वह इसमें कई प्रकार के तथ्यों का विवरण करते हुए उसका विश्लेषण करते है। इससे आगे बड़े हुए वह अश्वेत वर्ग को दलितों के साथ रखकर तुलनात्मक विवरण करते हैं।

इस सवाल की पड़ताल में रांबिन ज्रेफी, डी.एस.रवीन्द्र दास के हवाले से, जिन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के दो प्रकाशनों का संपादन किया है और वामपंथी मजदूर संघ के सदस्य भी रहे बताते हैं कि - जब उनका चुनाव हुआ तो सदस्य यह नहीं जानते थे कि वह दलित है। वर्ष 1997 में उन्हें तमिलनाडु यूनियन ऑफ़ जर्नलिस्ट का प्रेसिडेंट भी चुना गया। परंतु उनकी शादी में, जब राज्य की मुख्यमंत्री क.करूणानिधि उन्हें संबोधित करते हुए कहते है कि उन्हें उनकी शादी पर गर्व है। क्योंकि वह दलित है और एक ब्राह्मण लड़की से शादी कर रहे है। तब उनके बाकि पत्रकार साथियों को पता चलता है कि "वह दलित हैं।" जब लोगों को यह पता चला की वह दलित है, रवीन्द्र बताते है कि उनकी जीवन में ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ लोग उन्हें पहले की तरह प्यार व इज्जत देते थे। परंतु, यह महत्वपूर्ण है कि वह अपना कार्य अपनी पहचान को बिना बताकर कर रहे थे। उन्होंने बताया कि -

> "पत्रकार अपनी पहचान छुपाते है। क्योंकि यदि वह एक दलित होने के नाते काम करें, तो उन्हें प्रताड़ित किया जाता है। यह जरुरी भी नहीं है सभी को आपनी पहचान बताई जाए। पत्रकारों को समुदायों में नहीं बात सकते यह सही नहीं होगा।क्योंकि इससे पहली चीज यह होगी की वह आलग थलग हो जायेगा। अन्य समुदायों के पत्रकारों को एक रास्ता मिल जायेगा जिससे दोनों में भेदभाव बढेगा। दलित और ज्यादा हाशिये पर चले जाएँगे।" [39]

उनका यह कथन मीडिया का जातिगत भेदभाव का स्वरुप को दर्शाता है। साथ ही साथ यह बतलाता है कि अख़बारों को दलित ख़बरो में कोई दिलचस्पी नहीं होती। यदि दिलचस्पी बनती भी है तो वो दलितों के आरक्षण और उनके शोषण या उत्पीड़न से संबंधित ख़बरों में। वास्तव में अख़बारों को दलितों से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसके कारण के रूप में दलित समुदाय में पाठक का न होना या दलित समुदाय का उत्पादों के उपभोक्ता के रूप में न होना समझा जा सकता है। संक्षेप में, दलित समुदाय अख़बारों का लक्षित पाठक वर्ग नहीं हैं।

दलित समुदाय के ख़बरों में वस्तुनिष्ठा की कमी के कारण के रूप में दलित पत्रकारों की सहभागिता कि कमी के साथ-साथ. दलितों के शोषण और उत्पीड़न के अनुभवों से अनजान रहना कहा जा सकता हैं। इसलिए दलितों साथ होने वाले तमाम अमानवीय ख़बरों में दोहरापन देखने को मिलता है। इसलिए जरुरी हैं कि मीडिया संस्थान में दलित समुदाय की भागीदारी में इजाफा हो और दलित समुदाय के संस्कृति और समस्याओं के प्रति पत्रकारों को संवेदनशील बनाया जा सके। तभी दलित समुदाय की समस्याओं का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा।

आजादी के बाद मीडिया में दलित सहभागिता का सवाल 90 के दशक में दलित राजनीति के उभार और उसपर पूर्वाग्रही रिपोर्टिग और ख़बरों के बाद सतह पर देखने को मिलता है। इसी समय उनियाल अपने लेख में अपने अनुभव बताते हुए लिखते है कि -

---

[39] रोबिन जेफ्री,"भारत में समाचार पत्र क्रांति" अनु. डा. सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली,2004, पेज न- 94

> "उनसे जब एक विदेशी अख़बार के पत्रकार द्वारा एक प्रश्न पुछा गया तो उनको एक झटका लगा। उस पत्रकार ने पुछा था कि -"क्या आप किसी पत्रकार को जानते है। जो दलित हो?" अचानक से उनियाल जी को याद आया, जो पेशे से स्वयं 30 साल से पत्रकार थे। अभी तक के 30 साल के सफ़र में उन्हें एक भी दलित पत्रकर नहीं मिला हैं।उन्होंने फैसल किया की वह इसका पता लगायेंगे।परंतु,अत्यधिक दुख की बात थी कि अन्य पत्रकार जिनको उनियाल जी ने फ़ोन किया उनका जवाब अत्यधिक निराशाजनक था। जो पत्रकारिता के क्षेत्र में दलित पत्रकारों की सहभागिता को उभार कर सतह पर लाता है।"[40]

यही कारण है की कांशीराम जी ने जब बहुजन समाज पार्टी का निर्माण किया और उसके बाद अपनी पत्रकारिता प्रारंभ करने का भी ऐलान किया। क्योंकि उनका साफ तौर पर कहना था कि मुख्यधारा की मीडिया दलितों व उनके मुद्दों से बहुत दूर है। वह दलितों के लिए नहीं है। कांशीराम यह भी बताते है कि समस्या यह भी है कि दलित समुदाय के लोग अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने के बाद, अपने समुदाय के प्रति अपनी जिम्मेदारी से विमुख हो जाते है। जो दलित समुदाय और दलित समुदाय के वर्गीय समस्या के तरफ़ इशारा करती है। दलित समुदाय के लोगों की मुख्यधारा मीडिया में सहभागिता के संदर्भ में रांबिन जेफ्री अमेरिका के उदाहरण का हवाला देते हुए बताते है कि -

> "U.S की तरह भारत को भी जरुरत है की वह कोई कठोर कदम उठाये।1970 में american society of newspaper editors(ASNE) ने एक लक्ष्य निर्धारित किया की 2000 तक आमेरिका की जनसँख्या का 26% अल्पसंख्यक व 13% अश्वेत(ब्लैक) का मीडिया के क्षेत्र में होना अनिवार्य होगा। व कोई भी इन्हें नौकरी देने से मना नहीं कर सकता।जिसके कारण बड़े बड़े पब्लिशिंग हाउस ने इन्हें नौकरियो पर रख बड़े पद दिए गये।"[41]

---

[40] बी.एन.उनियाल "इन सर्च ऑफ़ ए दलित जर्नलिस्ट." *द पायनियर",* 16 (1996).

[41] रोबिन जेफ्री,"भारत में समाचार पत्र क्रांति" अनु. डा. सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पेज न- 156

प्रश्न यह उठता हैं कि आज तक भारत में ऐसे प्रयास क्यों नहीं किए गए। इसके पीछे क्या कारण थे? वर्ष 1998 में दलित बुद्धिजीवी ने ज्ञापन संपादकों को दिया। जिसमें कहा गया कि अमेरिका की यह योजना भारत में लागू क्यों नहीं की जा सकती। परंतु ये हो नहीं पाया ये कहा गया कि भारत में ऐसा करना संभव नहीं हैं। क्योंकि मौजूदा समय में मीडिया लगभग पूर्ण रुप से निजी हाथो में है और मौजूदा समय में यह करना संभव नहीं है। मीडिया में दलितों महिलाओं की सहभागित के विषय women media and news trust (2014) बताती है कि -

> "ज्यादातर भारतीय पत्रकार हिन्दू ऊँची जाति से संबंधित है उत्तर भारत में महिलाएं पत्रकार है। उनमे से अधिकतर ऊँची जाति की महिलाएं ही है, पत्रकारिता के क्षेत्र में दलितों की भागीदारी बहुत ही कम हैं। दलित महिलाएं लगभग नगण्य हैं, जो महिलाएं शहर से दूर कस्बो में पत्रकारिता के व्यवसाय में है उनके काम करने की परिस्थितियां बहुत ही ख़राब हैं। लैंगिक आधार पर भेदभाव बहुत ज्यादा है उनके पास साधन नहीं है तनख्वाह बहुत कम है।"[42]

मुख्यधारा की मीडिया में जहां दलित पुरुष पत्रकारों की स्थिति भेदभावपूर्ण है, वहां दलित महिला पत्रकारों सवाल की परिकल्पना ही एक साथ कई सवालों को खड़ा करता है। जिसकी विस्तार से चर्चा आगे के अध्याय में की गई है।

[42] women media and news trust 2014. https://www.dasra.org/social-organization/women-media-and-news-trust ,10/7/2017

अध्याय - 2

पत्रकारिता में दलित ख़बरों की दशा और दिशा

पत्रकारिता में दलित ख़बरों की दशा और दिशा

> "आजकल सभी अख़बारों में अबलाओं के बारे में बहुत कुछ लिखा जाता हैं, फिर भी यह महाअनर्थ मिटाने के लिए आप में से कोई प्रयास नहीं कर रहा हैं। इसका कारण क्या होगा"?[43]

यह प्रश्न ताराबाई शिंदे अपनी पुस्तक *स्त्री-पुरुष तुलना* में करती हैं। उनका सन्दर्भ अलग था वह उन लेखकों और समाज सुधारकों से पूछ रही थी, जो महिलाओं की व्यथा के बारे में लिखते थे, परंतु करते कुछ नहीं थे। इसे यदि हम आज के सन्दर्भ में देखें तो पाएंगे कि समय ज्यादा बदला नहीं हैं। पत्रकार महिलाओं से संबंधित मुद्दों के बारे में लिखते है स्वयं मीडिया संस्थान में महिलाओं के प्रतिनिधित्व पर प्रश्न उठते रहे हैं। परंतु, पत्रकारिता के अंदर मौजूद पितृसत्ता पर चुप्पी साथ लेते है। यही वजह हैं कि विभिन्न शोधों, पुस्तकों और स्वयं पत्रकारों ने भी पत्रकारिता को अत्यधिक पितृसत्तात्मक चरित्र वाला व्यवसाय मानते हैं।

[43] ताराबाई शिंदे, स्त्री पुरुष तुलना अनु.जुई पालेकर, संवाद प्रकाशन मेरठ पेज न.

उसी प्रकार मीडिया में दलित ख़बरों को जायजा लिया जाए तो उस लेखन के साथ कुछ समस्याएं जुड़ी हुई दिखती हैं। जैसेकि दलितों के शोषण से संबंधित खबरें ही अधिकतर मीडिया में आती हैं। उनसे संबंधित उनकी संस्कृति या उनके गौरव से संबंधित ख़बरों को मीडिया कवर नहीं करना चाहता, इसके कई कारण हो सकते हैं। जिसमें से एक पत्रकारिता का ब्राह्मणवादी स्वरूप भी हो सकता हैं। वास्तव में पत्रकारिता पर हमेशा प्रश्न उठते रहे हैं कि दलित मुद्दे व खबरें मीडिया से अदृश्य रही हैं। या यह कहे कि मीडिया उनके प्रति अदृश्य बने रहना चाहती हैं। यह अदृश्यता मीडिया संस्थानों में दलितों के प्रतिनिधित्व को लेकर भी दिखती हैं। इसका एक कारण यह बताया जाता हैं कि मीडिया संस्थान ही एक खास वर्ग द्वारा चलाया जाता है जो सवर्णों का है।

डा. अंबेडकर कहते हैं कि भारत में राष्ट्रीय मीडिया द्वारा दलितों के कवरेज अत्यधिक बुरा रहा हैं यह उसी प्रकार का हैं जैसे-

> "अमेरिका में अश्वेतों का प्रतिनिधित्व कर रहें टी. बुकर के साथ होता था, वह अश्वेतों की आवाज थे। जब वह भाषण देते थे, लोगों का हुजूम लग जाता था। परंतु हमेशा वहां की मीडिया द्वारा उनका भाषण अंत के पेज पर छपता था, वो भी बहुत छोटी सी जगह पर आज वही हाल भारत में दलितों का हैं या उनसे जुड़े लोगों का हैं।"[44]

शायद इन्ही परिस्थितियों के कारण डा. अंबेडकर और कांशीराम जैसे नेता जो की दलितों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व करते थे, को जब स्वंय या अपने समुदाय की आवाज के लिए एक मंच चाहिए था जो उनको वह मुख्यधारा मीडिया में नहीं मिला। जिसके कारण उन्होंने स्वयं की पत्र-पत्रिकाओं और अख़बारों का संपादन प्रारंभ किया। हालांकि यह भी एक समस्या हैं की इस प्रकार कि पत्रिकाएं आर्थिक अभावों के कारण ज्यादा समय तक चल नहीं सकी और इनका प्रकाशन बंद करना पड़ा।

दलितों की स्वयं की आवाज लोगों तक पहुंचे इसके लिए खुद की पत्रिका या अख़बार होना जरुरी हैं। इस पर भी विभिन्न मतभेद रहे हैं किसी समुदाय विशेष के लिए पत्रकारिता होनी चाहिए या

[44] एस.डी कपूर,बी. आर अम्बेडकर, वेब डुबोइस एंड द प्रोसेस ऑफ़ लिबरेशन, इकोनामिक एंड पोलिटिकल वीकली, December 27, 2003

नहीं। इस विषय पर डी.एस.रविन्द्र दास, जो स्वयं एक दलित पत्रकार रहे हैं, रांबिन जेफ्री से बातचीत में कहते हैं कि -

> "उन्होंने मुख्यधारा मीडिया में काम नहीं किया। परंतु, उनका मानना हैं की "विभिन्न समुदाएं या विचारधारा से सबंधित वर्गो या लोगों की अलग-अलग पत्रिकाए नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इस से एक प्रकार की होड़ लग जाएगी और सभी अपने समुदाएं के लिए पत्रिकाएँ प्रारंभ करेंगे जिसके कारण पाठकों के लिए एक अराजकता की स्थिति उत्पन्न होगी, जो की सही नहीं हैं। इस से अच्छा हैं की मुख्यधारा मीडिया में ही दलित अपना स्थान बनाए और लोगों तक अपनी आवाज पहुचाएं। वह यह भी मानते थे कि यह सरल नहीं हैं। क्योंकि दलितों को मुख्यधारा मीडिया में खुद की पहचान छुपाकर भी काम करना पड़ता हैं, जो उन्होंने भी किया था।"[45]

मुख्यधारा मीडिया के पूर्वाग्रही मानसिकता के कारण डा. अंबेडकर व कांशीराम को स्वयं पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करना पड़ा।

पुस्तक "*दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स*" जो घनश्याम शाह द्वारा लिखी गयी हैं। जिसमें वह समकालीन भारत में दलितों के संघर्ष की बात करते हैं। अपनी पुस्तक में वह आज के दलितों की पहचान से संबंधित वाद-विवाद की चर्चा कर उसको समझने का प्रयास करते है। जिसमें उन्होंने चार महत्वपूर्ण तथ्यों को दर्शाया हैं। पहला, हमारे समाज में समानता से संबंधित जो मूल्य हैं, वह हर स्तर पर होनी जरूरी हैं। हालांकि विभिन्न बुद्धिजीवियों, पूंजीपतियों ने इसे अपने तरीके से परिभाषित किया हैं। परंतु, बदलाव के लिए समानता के सिद्धांत का समाज में होना जरूरी हैं। दूसरा, पूंजीवादी विकास, हमारे समाज में पूंजीवादी विकास हो तो रहा हैं। परंतु असमान रूप से हो रहा है। सांस्कृतिक रूप से हमारे समाज में वर्ण-व्यवस्था अभी भी व्याप्त हैं जिसके कारण विकास दलित समुदायों के अंतर्गत नहीं हो पा रहा हैं। तीसरा, सुरक्षात्मक भेदभाव अर्थात आरक्षण, सरकारी नौकरियों या शैक्षिक संस्थानों में दलित प्रवेश प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। जिसका एक कारण उनको अब मिलने वाली शिक्षा हैं जिसमे आरक्षण महत्वपूर्ण भूमिका अदा

[45] रोबिन जेफ्री,"भारत में समाचार पत्र क्रांति" अनु. डा. सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पेज न- 150

करता है। दूसरा, दलितों का जो वर्ग जो पढ़-लिख रहा हैं। दलितों का वह वर्ग मध्य वर्ग में प्रवेश कर रहा हैं। साथ-साथ वह स्वयं के विकास में आत्म-केन्द्रित होता जा रहा है जिसके कारण दलितों का यह वर्ग स्वयं दलितों से जुड़ी जमीनी स्तर की समस्याओं से दूर होता जा रहा हैं। चौथा, प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति अर्थात competetive पॉलिटिक्स दलितों के मध्य एक प्रकार की जागरूकता पैदा करती हैं या उनमें राजनीति के प्रति सक्रिय होने के लिए रूचि पैदा करती हैं। संसदीय ढांचे में जो दलितों को आरक्षण मिला हैं। वह दलितों के लिए एक सकारात्मक रूप से उनकी भागीदारी को महत्व देता हैं। वह जिसके कारण उनके अंदर एक जागरूकता उत्पन्न हुई हैं। इस जागरुकता के कारण ही वह अपनी आवाज को उठा पा रहे हैं। यदि उनकी आवाज को कोई नहीं सुन रहा हैं, या उनको दबाया जा रहा हैं। तो वह आवाज एक आंदोलन का रूप भी ले लेती हैं।

इन तथ्यों के सन्दर्भ में समकालीन समय में दलित युवा वर्ग के लिए इसलिए महत्व्पूर्ण हो जाते है। क्योंकि आज भी विभिन्न संस्थानों में जातिगत भेदभाव देखने को मिलता है और इससे पत्रकारिता संस्थान भी अछूते नहीं है। ऐसे में लोकतंत्र के चौथे खंभे के रूप में मीडिया की यह जिम्मेदारी है कि वह संविधान के द्वारा समानता के सिद्धांत की अवधारणा को मजबूत करने में सहयोग करें। संविधान के आरक्षण के प्रावधान के वजह से ही सरकारी मीडिया संस्थानों में दलित पत्रकार का मिलना कुछ प्रतिशत सम्भव भी हो सकता है क्योंकि वहां आरक्षण है। परंतु, निजी पत्रकारिता संस्थानों में यह असंभव सा प्रतीत होता है। आज समकालीन भारत में दलितों के कहीं ना कहीं आगे बढ़ाने में सहयोग दे रहे हैं। जो देखा जा सकता हैं बहुत से दलित ऐसे हैं जो कि लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। अपने लेखन के माध्यम से परम्परागत जीवन शैली में मौजूद वर्ण-व्यवस्था का आलोचनात्मक विश्लेषण कर रहें है। साथ ही साथ दलित समुदाय के सामाजिक जीवन में मौजूद समस्याओं को अभिव्यक्त भी कर रहें है। एस. विश्वनाथन द फ्रंट लाइन रिपोर्ट के आधार पर अपनी किताब “दलित इन द्रविड़ियन लैंड” में दलित विषयों के लेखो के संग्रह प्रस्तुत कर, भारत में स्थापित जातिगत तत्वों को समझने का प्रयास करते हैं और बताते है कि भारत में व्यस्थापित जातिगत तत्वों के कारण दलित समुदायों

को किस तरह के भेदभावों का सामना करना पड़ता हैं। महत्वपूर्ण बात यह हैं की फ्रंट लाइन व द हिंदू के चीफ एडिटर यह मानते हैं कि -

> "मीडिया दलित मुद्दों को अपने अख़बारों में बहुत कम जगह देते हैं भारतीय समाचार कक्ष में कोई दलित पत्रकार भी मुश्किल से ही मिलेगा। यही कारण हो सकता हैं कि अख़बारों में जो दलित संबंधी मुद्दे हैं उनको बहुत ही कम जगह मिलती हैं। हमारा भारतीय संविधान समानता, स्वतंत्रता, न्याय आदि पर आधारित हैं। संविधान में सभी को समान अवसर प्राप्त हो इसके लिए सकारात्मक कार्यवाही अर्थात आरक्षण का भी प्रावधान हैं जिसके तहत जो पिछड़े वर्ग, एससी, एसटी जाति के लोग हैं सभी को समान व साथ लाने के लिए आरक्षण दिया गया हैं। भारत में किसी के अधिकारों का हनन ना हो इसलिए मानव अधिकार संगठन भी बने हैं। परंतु, लिखित अधिकार होने के बाद भी रोज मानवाधिकार संगठनों के पास दलित शोषण और उत्पीड़न की कई खबरें आती हैं। हालांकि यह किसी ना किसी रूप में समाज के सामने आ ही जाते हैं।"[46]

जितना अधिक उत्पीड़न व शोषण हैं उतनी यह घटनाएं समाज में अपना स्थान नहीं बना पाती है। इसके कई कारण हैं जैसे कि मीडिया का दलितों के प्रश्न से मुंह चुराना, दलित संबंधित मुद्दों को कम तवज्जो देना, दलितों को जिस प्रकार समाज अनदेखा करता आ रहा हैं मीडिया भी वहीं करता हैं। इसके कारणों के पड़ताल में पहला कारण यह हैं कि मीडिया भी उसी समाज से आता हैं, उसी समाज का हिस्सा हैं। मीडिया के अंदर भी वही शक्तियां काम करती है जो समाज के अंदर मौजूद होती है और समाज को नियंत्रित करती है। मीडिया स्वयं से कुछ भी नया करने के लिए स्वतंत्र नहीं है अगर वो कुछ करने को स्वतंत्र है तो वह है यथास्थिति को बनाए रखने में। दूसरा कारण, मीडिया संस्थानों में दलित समस्याओं या दलित ख़बरों पर रिपोर्टिंग या ख़बर लिखने वाले उस समुदाय के प्रति संवेदनशील नहीं है या उनकी उत्पीड़न के अनुभव से वाकिफ

---

[46]**एस. विश्वनाथन दलित इन द्रविड़ियन लैंड: फ्रंटलाइन रिपोर्ट ओन एंटी दलित वायलेंस इन तमिलनाडु, 1995-2004, नवयाना पब्लिशर्स 2009**

नहीं है। तीसरा कारण, मीडिया संस्थानों में दलित नहीं हैं। अख़बारों या मीडिया के मुख्य पदों पर बैठे हैं वह ऊंची जातियों से आते हैं, या वर्ण व्यवस्था को मानते हैं। जबकि मीडिया क्षेत्र अत्यधिक विश्वसनीय, ईमानदार और लोकतांत्रिक क्षेत्र होना चाहिए व आम लोग ऐसा मानते भी हैं।

परंतु, सच्चाई इससे थोड़ी अलग हैं। जो कई अकादमिक शोध और महत्व्पूर्ण लेखो में देखने को मिलता है। समाचार कक्षों में महिलाओं और दलित समुदायों के लोगों की भागीदारी काफी सीमित हैं। यदि हम इन दोनों को ध्यान में रखें तो हम पाएँगे कि दलित महिलाएं बहुत ही ज्यादा निचले स्तर पर होंगी जैसा की बी.एन.उनियाल भी अपने लेख "in search of a dalit journalist" में बताते है, कि -

> "दलित है ही नहीं और जो है वह अपनी पहचान छुपाकर काम कर रहे हैं।"[47]

तो यह अत्यधिक सोचने वाला प्रश्न हो जाता है कि दलित स्त्रियाँ जो पद्सोपन के सबसे निचले स्तर पर आती है वह महिलाएं मुख्यधारा मीडिया के क्षेत्र में होंगी भी या नहीं। शायद इन प्रशिक्षण संस्थाओं तक उनका पहुंच पाना बहुत ही मुश्किल हैं। यही कारण हैं की विभिन्न प्रयासों के बाद भी दलित महिलाओं का मीडिया संस्थानों में खोज पाना असफल सा प्रतीत होता हैं। हालांकि दलित महिलाएं मीडिया के क्षेत्र में हैं। परंतु, मीडिया के ही अपने चरित्र के कारण उन्हें अपनी पहचान छुपाकर कार्य करना पड़ता हैं और ऐसा कई दलित महिलाएं ऐसा कर भी रही हैं।

दलितों की ख़बरों का ना होना यह समकालीन भारत के अख़बारों की समस्या नहीं हैं। यह समस्या हमारे इतिहास से जुड़ी हैं। जिसके बारे में डा. अंबेडकर भी बात करते रहे हैं। वह कई शोधकर्ताओं ने इस पर मूल्यांकन किया है। जिसमें से धनंजय कीर की पुस्तक जो कि "डॉ अंबेडकर: लाइफ एंड मिशन" पर आधारित पुस्तक है, वह बताती हैं कि-

---

[47] बी.एन.उनियाल "इन सर्च ऑफ़ ए दलित जर्नलिस्ट." *द पायनियर",* 16 (1996).

> "दलितों से संबंधित ख़बरों का बहुत ही कम कवरेज हुआ करता था जिसको अंबेडकर मानते थे। वह यही कारण हैं की उन्होंने अपना खुद का मंच अपने अपने आवाज लोगों तक पहुंचाने के लिए अपना एक जगह होना चाहिए। जिसके लिए उन्होंने पत्रिका प्रारंभ की "मूकनायक" जिसके विज्ञापन के लिए, उन्होंने 'केसरी' न्यूज़ पेपर जो कि बाल गंगाधर तिलक चलाते थे, से निवेदन किया 'केसरी' अख़बार में मूकनायक पत्रिका के लिए एक विज्ञापन देना चाहते थे। 'केसरी' उस समय के लोकप्रिय अख़बारों में से था। बहुत अच्छा जरिया हो सकता था लोगों तक इस पत्रिका की जानकारी देने के लिए, परंतु बाल गंगाधर तिलक जी ने इस निवेदन को अस्वीकार कर दिया।"[48]

उनकी इस पत्रिका के प्रति अस्वीकृति वर्ण-व्यवस्था से संबंधित सोच को दर्शाती हैं। छुआछूत केवल दलितों को छूने से ही नहीं फैलता, यह प्रथा छुआछूत भर तक सीमित नहीं थी, लोगों की सोच में व्याप्त थी। लोगों को लगता था कि यदि वह दलितों से संबंधित ख़बर को अपने अख़बारों में सकारात्मक रूप से जगह देंगे, वह लोगों तक पहुंचेगी तो वह उनके लिए नकारात्मक रूप ले सकती हैं। यह केवल इतिहास तक ही सीमित नहीं रहा, आज भी यही परिस्थिति हैं। इसकी बात 2006 में रोबिन जेफरी अपनी पुस्तक इंडियास न्यूज़पेपर रेवोलुशन में करते हैं उन्होंने प्रथम 9 महीने 1996 के द हिंदू और द टाइम्स ऑफ इंडिया के आर्टिकल्स का विश्लेषण किया और पाया कि "द हिंदू" ने 717 में से केवल 4 आर्टिकल ही दलितों से संबंधित व दलितों पर आधारित थे बल्कि द टाइम्स ऑफ इंडिया भी सामान स्थिति में ही था, 478 संपादकीय लेखों में से केवल चार दलितों पर आधारित थे। रॉबिन जेफरी बताते हैं कि-

> "भारत में दलितों की स्थिति उसी प्रकार की हैं जो कि अमेरिका में अश्वेतों की हैं। अश्वेतों के प्रति अमेरिका के अख़बारों का भी उसी प्रकार का नज़रिया था जो भारत में स्वर्ण मीडिया का दलितों के प्रति हैं।"[49]

चंद्रभान प्रसाद जो कि एक दलित स्तम्भ लेखक(columinist) हैं विभिन्न अख़बारों के लिए दलित मुद्दों पर लिखते रहे हैं। *The pioneer* में प्रसाद ने महसूस किया कि मुख्यधारा की मीडिया

[48] अंजलि देशपांडे, निजी शाशात्कर दिल्ली,

[49] रोबिन जेफ्री,"भारत में समाचार पत्र क्रांति" अनु. डा. सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004, पेज न- 150

दलित संबंधी मुद्दों से मुंह चुराती हैं और यह मीडिया वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है। चंद्रभान प्रसाद ने दलित मुद्दों के प्रति गंभीरता को समझा व इस समझ को आगे बढ़ाते हुए दलितों से संबंधित मुद्दों को महत्व दिया। उन्हें The pioneer में दलित डायरी नाम से एक कॉलम लिखने के लिए दिया जो कि साप्ताहिक कॉलम था। 1999 से 2003 तक उन्होंने यह कॉलम लिखा व इसी पर आधारित एक पुस्तक लिखी "Dalit diary:1999-2003: reflection on apartheid in india" यह पहली बार था कि किसी दैनिक अख़बार ने दलित संबंधित एक पूरे कॉलम को अपने अख़बार में जगह दी थी। इन कॉलमों में वो बताते हैं कि-

> "भारतीय मीडिया पूर्ण रूप से हर स्तर पर विकसित तो हो रही हैं। परंतु, दलित मुद्दों को सही प्रकार से उठाने के लिए मीडिया अभी भी तैयार नहीं हैं। भारत में असंख्य दलित रोज मारे जाते हैं, उनका शोषण होता हैं। परंतु किसी मीडिया में नहीं आता।""[50]

भारत में यह वर्ण-व्यवस्था हर संस्थात्मक स्तर पर कार्य करती है। मीडिया में इसका होना अत्यधिक विचारणीय हैं। क्योंकि मीडिया भारत के सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करता हैं ना कि किसी एक जाति या एक वर्ग का। दुसरे शब्दों में, लोकतंत्र के चौथे खम्भे के रूप में वह लोकतांत्रिक होने का दावा करती हैं।

शहरीकरण के दौर में जहां न्यूज़रूम में अलग-अलग बीट पत्रकारों को दी जाती हैं। जैसे- अपराध, राजनीतिक दल, शैक्षिक, सत्ता और पर्यावरण संबंधित मुद्दे या सिनेमा जगत से जुड़ी ख़बरें, आर्थिक बाजार, खेल जगत इत्यादि बहुत सी बीट हैं। परंतु, जाति से संबंधित कोई भी बीट किसी भी समाचार में उपलब्ध नहीं हैं। जबकि जाति से संबंधित मुद्दो के लिए एक अलग से बीट होना बहुत जरुरी हैं। महत्वपूर्ण यह हैं कि मीडिया संस्थानों में बैठे हुए पत्रकार दलितों के प्रति सकारात्मक सोच अपनाएं। दलितों से संबंधित ख़बरो को जगह ना मिलना या समाचार कक्षों में दलितों का ना होना और मीडिया संस्थानों के चरित्र को दिखलाता हैं।

---

[50] चंद्रभान प्रसाद ,1999-2003: रिफ्लेक्शन ऑफ़ अपर्थेइड इन इंडिया , नवयाना पब्लिशर्स, 2004

यदि उच्च पदों पर बैठे हुए पत्रकारों से बात कि जाए कि दलित मुद्दों से संबंधित कोई बीट क्यों नहीं हैं? या पत्रकार क्यों नहीं हैं? तो वह बहुत ही घिसा-पिटा सा जवाब देते हैं कि जाति पुराना व प्राचीन मुद्दा हैं अब हमें आधुनिकता से संबंधित मुद्दों को उठाना चाहिए। यदि हम अख़बारों को पलटे और देखें कि दलितों से संबंधित किस प्रकार कि खबरें हमें देखने को मिलती हैं। तो हम पाएंगे कि केवल दलितों के ऊपर हो रहे हिंसा से संबंधित खबरें ही मिलेंगी। दलितों का साहित्य कैसा रहा हैं? दलितों का विकास किस प्रकार से हुआ हैं? दलितों कि संस्कृति किस प्रकार कि रही हैं? इस पर हमें कोई भी लेख या संपादकीय देखने को नहीं मिलता। यदि किसी एडिटर को जातिगत संबंधी कोई ख़बर छापनी भी होती हैं। तो वह उसके मिजाज पर आधारित करता हैं कि वह किस प्रकार कि ख़बर छापना चाहता हैं व उस ख़बर को किस प्रकार का रूप देना चाहता है। एस.आनंद का लेख *"covering caste visible dalit, invisible brahman"* (2005) में वह बताते है कि -

> "भारतीय मीडिया द्वारा जातिगत संबंधित ख़बरो को कवर करना उसी प्रकार है जैसे वह निम्न जाति को कवर कर रहे है अर्थात भारतीय मीडिया इन ख़बरो को दिखाती है। परंतु उनकी सोच यही रहती है, यह निम्न है, जो की उनकी ख़बरों को कवर करने के तरीके में झलकता है। शहरीकरण के अंतर्गत पल रही मीडिया सदेव से अपनी यह ब्राहमणवादी सोच को दर्शाती आई है उनके लिए दलित संबंधी खबरे उनके समाज के हिस्से की ख़बर ना होकर सदेव से किसी और जो की उनसे निम्न है से संबंधित होती हैं।"[51]

जबकि इसके बरक्स ऊँची जाति समुदायों की ख़बरो को लिखने में इस तरह का पूर्वाग्रह देखने को नहीं मिलता है इसको महिलाओ के सन्दर्भ में देखने का प्रयास करें तो स्थितिया कुछ भिन्न हो जाती है। परंतु, महिलाओ के पक्ष में नहीं दिखती हैं। दलितों का न्यूज़रूम में ना होना और दलितों से संबंधित ख़बरो का सकारात्मक रूप से ना छपना इन दोनों के बीच में एक कनेक्शन हैं। जिसको स्वर्ण जाति द्वारा चलित मीडिया बनाए रखना चाहती हैं। केनेथ कूपर लेख

[51] एस. आनंद,. 'कवरिंग कास्ट: विसिब्ल दलित, इनविजिबल ब्राह्मिन', इन नलिनी राजन. अनु. प्रक्टिसिंग जर्नलिज्म: वैल्यूज,कंस्ट्रेंट्स इम्प्लीकेशन,. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन,2005, pp.172-173

वाशिंगटन पोस्ट में छपा जिसका टाइटल था *"Indias majority lower caste are minor voice in newspaper* " इसमें वह बताती हैं कि -

> "भारत में 4000 दैनिक अख़बार 100 भाषाओं में छपते हैं। यदि इन अख़बारों को विश्लेषित किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें से एक आवाज हमें सुनाई नहीं देती, भारत इतना बड़ा लोकतंत्र वाला देश हैं जिसमें 4000 दैनिक अख़बारों में रोज एक वर्ग कि आवाज सुनाई नहीं देती। वह वर्गीय समुदाय हैं निम्न जाति।"[52]

समाचार कक्ष में दलितों का ना होना, अमू जोसेफ के उसी विचार के जैसा हैं जैसा समाचार कक्षों में महिलाओं का ना होना, जो कि एक सिंबॉलिक ऑफ़ एक्सक्लूशन हैं तो हम इसे सिंबॉलिक एक्सक्लूशन ऑफ दलित इन इंडिया कह सकते हैं।

मीडिया में दलितों का चित्रण नकारात्मक रूप से दिखाया जाता हैं। वह कई प्रकार से इसे शोधकर्ताओं ने दिखाया भी हैं कि किस प्रकार मीडिया दलित व दलित मुद्दों को नकारात्मक रुप से समाज के सामने पेश करता हैं। मीडिया ने दलितों के प्रति एक रूढ़िवादी सोच बना ली हैं, वही सोच वह में समाज के सामने रखते हैं, यही कारण हैं कि दलितों को ना केवल मीडिया संस्थान में व अन्य संस्थानों में जातिगत भेदभाव देखना पड़ता हैं। मीडिया में जब भी दलित ख़बरों का उल्लेख होता हैं। तो वह केवल हिंसा मृत्यु या रेप बलात्कार आदि से जुड़ा होता हैं। वह दलितों का दूसरा चेहरा लोगों को दिखाना ही नहीं चाहते जो की उनके विकास व संस्कृति से जुड़ा हुआ हैं। वह दलितों कि सकारात्मकता या उनके द्वारा उठाए जाने वाली आवाजों को दिखाते नहीं हैं। मीडिया ने जो दलितों के प्रति स्टीरियोटाइप यानी रुढ़ीवादी सोच बना रखी हैं इससे पहले हमे समझना होगा की stereotype अर्थात रूडिवादी सोच का निर्माण कैसे किया जाता है? एक समूह यह समुदाय जो कि किसी एक प्रकार करैक्टर स्टिक पर आधारित होता हैं (जैसे कि महिलाएं, दलित, अल्पसंख्यक आदि) मीडिया उसे अपना निशाना बनाती हैं और एक सोच बनाती हैं वही सोच वह समाज के सामने रखती हैं। जो उस ग्रुप के या समुदाय के बारे में होती हैं।

[52]केनेथ जे. कूपर, इन्डियास मेजोरिटी: लोअर कास्ट्स आर माइनर वाईस, 1996

मीडिया की स्वयं की बनी हुई सोच लोगों तक उनके लेखन द्वारा पहुंचती हैं जो जनसमुदायों कि सोच का निर्माण करती हैं।

इसी प्रकार इसको कौन परिभाषित करेगा कि मीडिया संस्थान में काम करने के लिए किस प्रकार कि काबिलियत कि जरूरत होती हैं? मीडिया संस्थानों ने एक सोच बना ली हैं की जो दलित हैं। वह काबिल नहीं हैं। यदि काबिल हैं, तो वह उस जगह के लिए सही नहीं हैं। मीडिया संस्थान यह सोच ही नहीं सकता कि कोई भी दलित काबिल हो सकता हैं। उसमें योग्यता हो सकती हैं कि वह मीडिया संस्थान में कार्य कर सकें। जब भी किसी बड़े अख़बार के संपादक को प्रश्न किया जाता हैं कि आपके समाचार कक्ष में कोई दलित क्यों नहीं हैं? तो पहला, जवाब होता हैं कि कैंडिडेट ही नहीं आते। दूसरा, ये कि कैंडिडेट इस पद के लिए योग्यता अनुसार नहीं हैं, तीसरा, दलितों को अंग्रेजी अच्छे से नहीं आती।

स्वतंत्रता से पूर्व के अख़बार जो दबे हुए वर्ग थे उनके लिए किसी भी प्रकार का कोई लेख छापने को तैयार नहीं थे। उनकी आवाज लोगों तक पहुंचने नहीं देना चाहते थे जो वर्ग पहले से ही शोषित, छुआछूत का शिकार था, बहिष्कृत था। उस दौर के समाचार पत्रों ने भी बहिष्कृत किया हुआ था। डा.अंबेडकर जो कि छुआछूत को समाप्त करना चाहते थे, उन्हें भारतीय मीडिया ने एक हिन्दू धर्म के नाशक व देशद्रोही के रूप में खड़ा किया। उस समय भारतीय मुख्यधारा के अख़बारों का लहजा डा.अंबेडकर के प्रति इस प्रकार थी कि वह हिंदुत्व को समाप्त करने वाले नाशक हैं, डा.अंबेडकर अख़बारों या पत्रिका के प्रति अत्यधिक विचारणीय सोच रखते थे। उनका मानना था कि बदलाव तभी आ सकता हैं जब सभी लोगों के पास इस वर्ग की आवाज पहुंचेगी। लेकिन भारतीय मुख्यधारा के अख़बार उस समय ऐसा होने देना नहीं चाहती थी। इसका एक कारण यह भी हैं कि औपनिवेशिक काल के अख़बार उस समय के समाज सुधारक या बुद्धिजीवी लोगों के द्वारा निकाले जाते थे जो प्रगतिशील विचारधारा और हिंदुत्व के प्रति गहरी आस्था व विश्वास रखते थे। जिसके कारण किसी भी एक विषय पर उनकी आम सहमति देखने को नहीं मिलती थी। मसलन, महात्मा गांधी के दलितों की समस्याओं का समाधान जहां मंदिर में प्रवेश से मानते थे, अम्बेडकर दलितों के लिए पीने के पानी के लिए संघर्ष कर रहे थे। परन्तु, मूल बात

यह है कि अख़बार उस दौर में लोगों से, लोगों तक अपनी बात पहुचने का एक माध्यम था। गांधी की दांडी यात्रा निकली सत्याग्रह के नाम पर तो उसे भारतीय मीडिया ने जोर शोर से दिखाया गया, वह गांधी को महात्मा के रूप में लोगो के सामने प्रस्तुत किया। परंतु, वही दूसरी तरफ जो डा.अंबेडकर ने महार संघर्ष के लिए सत्याग्रह किया तो उनके सत्याग्रह को, सत्याग्रह का नाम भी नही दिया गया।[53] इसी कारण डा.अंबेडकर को अत्यधिक जरूरत महसूस हुई कि वह एक पत्रिका या अख़बार निकाले जो कि यह जो बहिष्कृत वर्ग हैं उसकी आवाज को लोगों तक पहुंचाएं।

आजाद भारत की पत्रकारिता में दलित नेता या दलित राजनीती को बहुत कम जगह मिलती हैं। दलित राजनीती भारतीय मुख्यधारा कि मीडिया ने सदैव से ही अनदेखा किया हैं। काशीराम जो कि एक बहुत ही जाने-माने दलित बहुजन राजनीति के नेता थे जब उनकि मृत्यु हुई उनकी मौत को भारतीय मीडिया ने बहुत कम महत्व दिया गया। डा.अंबेडकर, कांशीराम, मायावती या अन्य दलित नेताओं को सदैव से ही मुख्यधारा राष्ट्रीय मीडिया में बहुत ही कम स्थान मिलता हैं। यह भी कह सकते है कि कहे कि उनको वह स्थान नहीं मिला जो वह डीजर्व करते थे यही कारण हैं कि दलितों ने हमेशा अपनी पत्रिका या अख़बार निकालने का प्रयास किया हैं। हालांकि इसमें उन्हें सफलता बहुत कम मिलती हैं। इसके अपने कारण हैं आर्थिक स्थिति, लोगों का समर्थन या राजनीति या पत्रकारिता के मापदंड इन पत्रिकाओं या अख़बारों को चलने नहीं देती।

मायावती जो उत्तर प्रदेश कि चार बार मुख्यमंत्री रह चुकी हैं, जिन्होंने बहुजन समाजवादी पार्टी को एक नई दिशा प्रदान की है। जब वर्ष 2007 में फोर्ड(ford) मैगजीन ने उनको 10 शक्तिशाली महिलाओं में शामिल किया। परंतु, भारतीय मीडिया इसे सकारात्मक रुप से ना दिखाकर एक अलग ही प्रकार से लोगों के सामने पेश कर रही थी। "द हिंदू" में लेख लिखा गया जिसमें कहा गया कि सोनिया गांधी के साथ मायावती पहुंची भारतीय मीडिया कि दोहरी मानसिकता यहीं पर दिखती हैं। यदि कोई महिला एक्टर खूबसूरत यह शक्तिशाली महिलाओं में शुमार होती हैं। विश्व

[53] वी.रत्नामाला, अंबेडकर और मीडिया, अनु.रजना विष्ट, सं. अनिल चमाड़िया, "जन मीडिया" वर्ष-4,अंक 39, जून 2015, नई दिल्ली, पेन न. 7

में तो उसे बढ़ा चढ़ाकर दिखाया जाता हैं। परंतु, जब एक दलित महिला इस शक्तिशाली महिला के लिस्ट में शामिल हुई तो दलित महिला या दो शक्तिशाली महिला लिखने में संकोच क्यों है? यह स्थिति दलित राजनीती पर पत्रकारिता के विरोध भाषा को सतह पर लाती है।

अरविंद दास "हिंदी में समाचार" में वर्ष 1986 और वर्ष 2005 में नवभारत टाइम्स में प्रदर्शित दलित समाचारों का मूल्यांकन करने का प्रयास करते है और हिंदी पत्रकारिता की वस्तुगत स्थितियों का मूल्यांकन करते है।

सामग्री विश्लेषण- दलित एंवं आदिवासी:1986

तिथि	**शीर्षक**	**विषय**	**स्रोत**	**कोलम**	**पेज**
27.04	बाल्मीकि सम्मलेन अगले महीने	सम्मलेन	नगर संवादाता	दो	तीन
05.04	बाल्मीकि सम्मलेन में प्रतिनिधि(फोटो)	सम्मलेन	उल्लेख नहीं	तीन	आठ
16.06	बांग्लादेश चकमा आदिवा वापस लेगा	अन्य	विशेष प्रतिनिधि	दो	पहला
9.08	हरिजन बस्तीयों के विकास लिए एक करोड़ रूपए	विकास	नगर संवादाता	दो	तीन
28.01	आदिवासी ग़दर केंद्र के ति आजादी का अर्थ	आदिवासी समस्या	सुनीलम	चार	संपाद्कीये अग्रलेख

सामग्री विश्लेषण: 2005

तिथि	शीर्षक	विषय	स्रोत	कॉलम	पेज

08.04	उनके दलित और हमारे	रंगभेद और दलित	चंद्रभान प्रसाद	छह	सम्पादकीय अग्रलेख
05.07	एससी/एसटी छात्र एडमिशन में दे पर भड़के, तोड़फ की	तोड़फोड़	नगर संवादाता	दो	पांच
14.08	दलित-सवर्ण टकर के बाद गाँव तनाव	जातिय टकराव	एनबीटी न्यूज	तीन	सात
12.12	निजी क्ष मेंआरक्षण के म पर दलितों ने रेली निकली	आरक्षण, रैली	एनबीटी न्यूज	दो	चार
20.12	दलित लड़की पर जुल्म से महि आयोग नाराज	जुल्म	वस	एक	चार

54

80 के दशक और भूमंडलीकरण के शुरूआत दौर में नवभारत टाईम्स में दलित और आदिवासियों के ख़बरों या उसके प्रस्तुतीकरण में कोई नई चीज देखने को नहीं मिलती हैं, ख़बरों के शीर्षक और उनकी अंर्तवस्तु में भी दोहराव देखने को मिलती है। यह स्पष्ट करता है कि वंचित समुदाय के लोग के प्रति अख़बारों के रूख में कोई बदलाव नहीं आ पाया था।

[54] अरविंद दास, "हिंदी में समाचार", अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पेज न०- 150-151

यदि हम इन दोनों वर्षो को ध्यानपूर्वक देखें तो पाएँगे की वर्ष 1986 में पूरे वर्ष एक भी दलित स्त्री से संबंधी किसी भी ख़बर को नहीं छापा गया। जबकि वर्ष 2005 में पूरे वर्ष में केवल एक ही दलित महिला से संबंधी ख़बर को छापा। जिसमे भी उस दलित महिला की स्थिति को ना बताते हुए उन्होंने महिला अयोग को महत्व दिया गया। दलितों के प्रकाशित लेखों के बरक्श दलित विषयों पर लिखे जा रहे तथ्यों का वस्तुपरक अध्ययन करे तो कई चीजे स्पष्ट होती दिखती है। मसलन, दलित विषयों पर संवेदनशील लोग हिंदी या भाषाई अख़बारों में दलित विषयों पर वस्तुनिष्ठ लेखन करते दीखते हैं। इसके साथ-साथ दलित समस्यओं के मूल को नजरंअदाज कोशिश भी दिखती है। 8 दिसंबर 1986 को नवभारत टाईम्स में प्रकाशित अपने पहले आलेख बार-बार बिखरती हरिजन राजनीति में दलित नेताओं के बीच आपसी फूट और उनकि स्वार्थपरता कि आलोचना करते हुए मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं कि-

> "आज अपने अस्तित्व कि तलाश में संपूर्ण दलित वर्ग भटकाव कि स्थिति में हैं। वह हजार टुकड़ों में बंटा हैं। उसकी अस्मिता स्वयं दलित नेताओं ने हीं सौदेबाजी की हैं। जो अलग-अलग राजनीतिक खेमे में बैठकर समाज कि नहीं बल्कि अपनी सेवा कर रहे हैं। "[55]

इसी प्रकार 23 दिसंबर 1986 को नवभारत टाइम्स में "पेरियार कि याद और आज के नए सवाल" शीर्षक से मस्तराम कपूर के लेख प्रकाशित हुए। इस लेख में सवर्णों के द्वारा दलितों कि उपेक्षा और दलितों के हाथों में नेतृत्व कि वकालत करते हुए बताते हैं कि-

> "इस व्यवस्था को बदलना अब निहायत जरूरी हैं। वर्तमान राजनीतिक दल यह काम नहीं कर सकते, क्योंकि उन सब का नेतृत्व स्वर्ण जातियों के पास हैं। जब तक कोई ऐसा दल नहीं

[55]मोहनदास नैमिशराय,"बार-बार बिखरती हरिजन राजनीति " 8 दिसंबर, 1986, नवभारत टाईम्स

बनता जिसका नेतृत्व दलित वर्गों के पास हो। जब तक कम से कम 5 साल तक देश का प्रधानमंत्री हरिजन नहीं बनता। तब तक इस स्थिति में बदलाव लाना मुश्किल हैं।"[56]

वर्ष 2005 में नवभारत टाइम्स में चंद्रभान प्रसाद और अन्य लेखकों के संपादकिय पेज पर छपे लेखों के माध्यम से भूमंडलीकरण के बाद दलित विमर्श के बदलते स्वरूप का विश्लेषण करने कि कोशिश करते है। चंद्रभान प्रसाद बताते है कि -

"अपने आलेखों में भूमंडलीकरण के दौर में पूंजीवाद और उपभोग को बढ़ावा देने और उस में दलितों कि हिस्सेदारी और देश में दलित पूंजीपतियों के उभार कि बार-बार वकालत करते हैं। साथ ही अमेरिकी अश्वेत उसे दलितों कि तुलना कर भारतीय राज्य और समाज को अमरीकी राज्य और समाज से सीख ले कर अपने समाज में अमेरिका कि तरह ही डाइवर्सिटी लाने कि गुजारिश करते हैं।"[57]

6 जनवरी 2005 को "दलित से बनता बाजार" शीर्षक लेख में बरसों से आर्थिक अभाव और गरीबी को झेल रहे दलितों के बारे में लिखते हैं-

"क्योंकि दलित इंटरप्राइजेज कंजूमर होते हैं इसलिए वह इस प्रकरण को तोड़ने में चिंगारी कि भूमिका निभा सकते हैं। प्राइवेट सेक्टर में दलितों को रिजर्वेशन अगर मिले तो इससे कंजूमर क्रांति होगी और जाहिर हैं उसका फायदा प्राइवेट सेक्टर को ही सबसे ज्यादा मिलेगा।"[58]

---

[56] मस्तराम कपूर, "पेरियार की याद और आज के नये सबाल", 23 सिंतबर 1986, नवभारत टाईम्स

[57] चंद्रभान प्रसाद, "संपादकीय पेज" वर्ष, 2005. नवभारत टाईम्स

[58] चंद्रभान प्रसाद, "दलित से बनता बाजार" 6 जनवरी 2005, नवभारत टाईम्स

नैमिशराय और चंद्रभान प्रसाद के माध्यम से हिंदी अख़बारों में पहली बार दलित विमर्श से जुड़ी बहस को एक दिशा देने कि कोशिश दिखती हैं। यहां पर यह रहकर यह रेखांकित करना जरूरी हैं कि नैमिशराय और चंद्रभान प्रसाद से पहले दलित लेखकों में कृष्ण मुरारी जाटव डी आर नेम के लेख नवभारत टाइम्स दिल्ली और हिंदुस्तान दिल्ली में छपा करते थे। लेकिन जैसा कि चंद्रभान प्रसाद 2009 में कहते हैं भारतीय मीडिया में दलित चिंतको का ब्रांड कभी नहीं बनाया जैसे कि वह अन्य चिंतकों के साथ करते हैं। यह ये तथ्य स्थापित करता है कि दलित विषयों पर तथ्यपरक और बेहतर लेख लिखे जा सकते है यदि उनको उचित जगह मिले इस माध्यम से दलित समुदायों के प्रति पूर्वाग्रही मानसिकता का खंडन किया जा सकता है।

इन विचारों के सन्दर्भ में जब में हाल के दिनों में टीना डाबी[59] पर प्रभावित ख़बरो का मूल्यांकन करने का प्रयास करती हूं, तो स्थिति बहुत निराशाजनक दिखती है। मैं अपने शोध में एक दलित महिला टीना डाबी जिन्होंने भारतीय सिविल सर्विसेस 2015 की प्रथम स्थान प्राप्त करने वाली लड़की थी, का केस स्टडी के रूप में रखना चाहती हूं। मेरा मुख्य काम यह देखना है कि अख़बार उनकी सफलता को किस प्रकार से देख रहे थे? वह अपने अख़बारों में डाबी को क्या स्थान दे रहे थे? जिसके लिए मैंने केवल एक सप्ताह(11 मई 2016 से 17 मई 2016)के अख़बारों व ऑनलाइन वेब की मुख्य हेडलाइंस का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

सिविल सर्विस भारत में होने वाले कठिन परीक्षाओं में से एक हैं। वर्ष 2015 में टीना डाबी ने इस परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया टीना डाबी दिल्ली से हैं। उनका जन्म भोपाल मध्य प्रदेश में हुआ था वह मध्यप्रदेश के परिवार से आती हैं। उनके माता-पिता दोनों कि भारतीय इंजीनियर अधिकारी रहे हैं। टीना डाबी का प्रथम स्थान प्राप्त करना महत्वपूर्ण हैं। यह अधिक महत्वपूर्ण तब हो जाता हैं जब वह पहली दलित महिला यूपीएससी कि टॉपर बनती हैं। टीना डाबी ने प्रथम स्थान प्राप्त कर के लोगों कि इस मानसिकता को चुनौती दी है कि दलित योग्यता में अन्य लोगों से कम नहीं होते हैं। उन्होंने यह दिखाया कि दलित में भी योग्यता की कमी नहीं है बशर्ते उपयुक्त माहौल मिले या उपलब्ध हो। टीना डाबी ने जब इस परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया

[59] 2015 में दिल्ली निवासी टीना डाबी ने सिविल सेवा परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

तो कई प्रकार के प्रश्न उठाए जिनसे बहुत से वाद-विवादो ने जन्म लिया। इसलिए जरूरी हैं यह देखना कि वह वाद-विवाद क्या थे? वह जो प्रिंट मीडिया के चरित्र पर हमेशा से प्रश्न उठते रहे हैं कि वह पूर्वाग्रही और वर्चस्वशाली मूल्यबोधो को बढ़ावा देती है। वह प्रिंट मीडिया, दलित समुदाएं की इस उपलब्धि को किस प्रकार देख रही थी।

"सेकंड ईयर इन होम रो दिल्ली गर्ल्स टॉप्स सिविल सर्विस एग्जाम[60]", "दिल्ली कि टीना डाबी आईएएस टॉपर"[61], "यूपीएससी में दिल्ली कि टीना टॉपर दूसरे नंबर पर कश्मीर का आमिर[62]", "टीना डाबी ने पहले ही प्रयास में किया आईएएस टॉप"[63], "रविशंकर प्रसाद संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकि मंत्री ने टीना डाबी से मुलाकात कि[64]", "UPSC टॉपर ने कि मुख्यमंत्री(kejrival) से मुलाकात"[65], "सिविल सेवा में दलित समाज" यह लेख शिवराज सिंह बेचैन द्वारा लिखा गया था[66]। जिसमें उन्होंने अपील कि दलित समाज से और भी टीना डाबी को आगे आना चाहिए व इसमें उन्होंने सहयोग कि मांग की हैं। क्योंकि टीना डाबी एक समृध परिवार से थी उनके लिए यह सफर आर्थिक स्तर पर इतना कठिन नहीं था जितना कि अन्य दलित महिलाओं के लिए हो सकता हैं। वह बताते हैं कि बुनियादी सुविधाएं जरूरी हैं उन बच्चों के लिए जिन में योग्यता तो हैं, परंतु आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं हैं। "यूपीएससी टॉप करने वाली टीना डाबी के 52% अंक[67]" यह जो मार्किंग हुई हैं। उसका जिक्र किया गया हैं की जिन्होंने टॉप किया हैं। उनके भी केवल 52 प्रतिशत नंबर ही हैं "मोदी राज में कैसे टॉप कर गए दलित और मुस्लिम छात्र[68]" इस लेख में भारत कि बदलती तस्वीर को पेश करने का प्रयास किया गया कि भारत बदल रहा हैं। सभी

[60] बुधवार,11 मई 2016 नई दिल्ली द टाइम्स ऑफ इंडिया
[61] 11 मई 2016, राजस्थान पत्रिका
[62] 11 मई 2016, राष्ट्रीय सहारा
[63] 12/5/2016, अमर उजाला
[64] 12 मई 2016 अमर उजाला
[65] 14 मई 2016 ,अमर उजाला पेज नंबर 8,
[66] 15 मई 2016 संडे स्पेशल देशकाल, अमर उजाला
[67] 16 मई 2016, अमर उजाला
[68] 12/5/2017, आई चौक टॉक टू डॉट इन

को समान स्तर पर देखा जा रहा हैं, साधारण शब्दों में कहे तो देश बदल रहा हैं समाज बदल रहा हैं।

यह उस समय के कुछ अख़बारों व सोशल वेबसाइट्स के एक हफ्ते कि हेडलाइंस हैं। टीना डाबी से संबंधित किसी भी प्रिंट मीडिया कि हेडलाइंस में उनकी पहचान को बताया नही गया। किसी भी अख़बार में नहीं बताया गया कि भारतीय सिविल सर्विस में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाली टीना डाबी पहली दलित महिला हैं। उन्हें वो तवज्जो नहीं दी गयी,जिसके वह काबिल थी अख़बारों कि हेडलाइंस में इस वर्ग को या इस वर्ग से संबंधित योग्यता को नजरंदाज किया गया इसके क्या कारण थे?

प्रिंट मीडिया का अपना चरित्र हैं जो कि विभिन्न शोधो से पता चलता हैं की पूर्वाग्रही मानसिकता पर आधारित हैं। शायद यही कारण हैं की उनकि एक रुढिवादी सोच बनी हुई हैं कि दलितो में योग्यता नहीं होती या ये कहे कि दलित योग्य नहीं होते। शायद यह भी एक कारण हो सकता हैं कि जब उस योग्यता को सराहने का समय आया तो प्रिंट मीडिया अपने चरित्र से हटकर सोच नहीं पा रही थी। यही कारण हैं कि किसी भी अख़बार में इसका जिक्र नहीं था।

टीना डाबी को उनकी पहचान से अलग करके देखा गया जो हो सकता हैं कि कुछ लोगों को (मीडिया का यह कहना कि मीडिया आधुनिक हो गया हैं। वह इन प्राचीन अर्थात्त जातिगत बातो पर विश्वास नहीं करते) सही लगता हो। परंतु, टीना डाबी के समय यह उल्लेख ना करना व 18 जून 2017 को भारतीय जनता पार्टी ने रामनाथ कोविंद को जब राष्ट्रपति पद के लिए अपना उम्मीदवार बनाया तो उसी मीडिया ने इसे भारतीय जनता पार्टी के लिए सकारात्मक छवि के रूप लोगो के सामने प्रस्तुत किया। यह बताते हुए उनके दलित होने के किस्से सुनाये उनकी योग्यता के पुल बांधे व जब विपक्ष ने भी राजनीती दाव समझते हुए स्वयं भी दलित महिला मीरा कुमार को राष्ट्रपति चुनाव के लिए उम्मेदवार घोषित किया। हालांकि मीडिया ने इसके प्रति चुप्पी साधी। यह मीडिया का कौन सा चरित्र हैं? क्या यह भेदभाव नहीं हैं? इस समय हर प्रकार कि मीडिया

के लिए लाभ कमाने का समय था जो वह कर रही थी जहा उन्हें लाभ नहीं मिलता वहां मीडिया अपना चरित्र दिखाती हैं।

कुछ अख़बारों का यह कहना था कि डाबी अत्यधिक समृद्ध परिवार से है तो उनके लिए यह बढ़ी बात नहीं थी। हां, यह यह सत्य हैं कि टीना डाबी एक समृद्ध परिवार से आती हैं। परंतु, तमाम समृद्ध दलित परिवार की लड़कियों ने अभी तक यह सफलता हासिल नहीं की। इसलिए यह महत्व्पूर्ण था कि टीना डाबी को एक रोल मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जाये जैसे, कल्पना चावला, सानिया मिर्जा या अन्य किसी महिलाओं की उपलब्धियो को प्रस्तुत किया जाता है। यह भी सत्य हैं कि उन्होंने बहुत ही कम उम्र में सफलता का वो स्थान प्राप्त किया हैं जो कि इस पिछड़े हुए समाज कि लड़कियो के लिए सम्भव नहीं हो पाया हैं। ये कहे कि इतना सरल नहीं हैं यही कारण हैं कि इन समुदाय कि लड़कियो के लिए टीना एक रोल मॉडल कि तरह उभरी हैं। हालांकि श्यौराज सिंह बैचेन ने सही कहा कि इसके लिए इस समुदयो्म के लोगों व लडकियों को समर्थन व आर्थिक मदद की जरुरत हैं।

परंतु, एक प्रश्न यह भी उठता हैं की टीना एक खास वर्ग से आती थी तब भी उनकि पहचान के साथ प्रिंट मीडिया द्वारा खिलवाड़ किया गया। यदि इस समुदाय कि अन्य लड़कि जो कि इस खास वर्ग का हिस्सा ना होकर जमीनी स्तर से आती तो क्या यह अख़बार उसे अपने अख़बारों कि हेडलाइंस में जगह भी देते और देते तो किस स्थान पर रखते। क्योंकि दलितों से संबंधित ख़बरों के जगह के लिए तो राजनीति होती रही हैं। यह एक दिन कि आखरी पन्नो में ख़बर बनकर पीछे छोड़ दी जाती है।

टीना व आमिर अख्तर जो कि UPSC के दुसरे स्थान प्राप्त करने वाले थे उनकि सफलता को कई ऑनलाइन वेब ने मोदी राज कि सफलता के साथ जोड़ा कि मोदी जी के राज में उन्हें यह सफलता मिलना सम्भव हो पाया हैं। परंतु कहीं ना कहीं ये गलत प्रतीत होता हैं। क्योंकि दोनों ही प्रधानमंत्री मोदी व सिविल टॉपर अलग-अलग हैं। दोनों कि मेहनत को राजनीति का रंग देना व इसे अपनी राजनीति चमकाने के लिए प्रयोग करना, ये सन्देश देता हैं कि दोनों व्यक्ति ने

मेहनत करके यह स्थान प्राप्त नहीं किया हैं। बल्कि मोदी राज में ऐसा हो पाया हैं क्योंकि उनकी राजनीति सबको सामान अवसर देने की हैं।

टीना डाबी की ही ख़बरो में आगे बढ़े तो और भी चौकाने वाली चीजें देखने को मिलती है। "आईएएस टॉपर टीना दूसरे टॉपर से करेंगे शादी[69]", "आईएएस टॉपर टीना डाबी और अतहर आमिर कि शादी को हिंदू महासभा ने बताया लव जिहाद कहा आमिर कि हो घर वापसी[70]", "आईएएस टॉपर टीना डाबी ने कि पुष्टि जल्द करने वाली हैं सेकेंड टॉपर अतहर आमिर से शादी" "UPSC टॉपर टीना आमिर के प्यार में हारी[71]", "टीना डाबी इन हिंदू महासभा प्रयास आउटफिट टू होल्ड बुद्धि-शुद्धि यज्ञ[72]" फुलहर शामली।

जो सोशल नेटवर्किंग साइट्स टीना डाबी कि यह कहकर आलोचना करते नहीं थक रही थी कि वह एक दलित लडकी हैं। आरक्षण के कारण उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ हैं। अचानक से टीना व आमिर के प्यार कि चर्चे हुए व उन्हें याद आया कि वह एक हिन्दू हैं। उन्हें हिन्दू संस्कृति का मान रखते हुए आमिर को छोड़ देना चाहिए या आमिर को हिन्दू धर्म अपनाना चाहिए यह बात हमारा समाज अर्थात सोशल नेटवर्किंग साइट्स व हिन्दू महासभा का लैटर भी बोल रहा था जो कि टीना के माँ बाप को हिन्दू महासभा द्वारा लिखा गया था। यही हमारे समाज कि दोहरी मानसिकता दिखती हैं की किस प्रकार तथ्यों को अवसर के अनुसार और आवश्यकता अनुसार प्रयोग किया जाता हैं।

यह अन्य घटना है जिसे में अपने शोध के लिए प्रयोग कर रही हूं जिसमें महत्वपूर्ण है यह देखना की किस प्रकार जब उन घटना की क्रूरता के लिए आंदोलन चल रहा था तब भारतीय मीडिया मुख्य तथ्यों से हटकर यह देख रही थी कि उसे मुख्य बहस का हिस्सा न बनने दिया जाए। यदि बहस होती भी है तो उसका प्रारंभ इस प्रकार होता है दलित युवाओ का कठघरे में खड़ा किया जाता है लोगो को यह दिखने का प्रयास किया जाता है कि युवा वर्ग जो राजनीति में

[69] अमर उजाला, 24 नवंबर 2016

[70] 2 जून 2017 वेब, जनसत्ता

[71] 24 नवंबर 2016 पत्रिका समाचार पत्र समूह

[72] 1 दिसंबर 2016 इंडिया टुडे

आना चाहते है इस यात्रा का वह लाभ उठाने के लिए राजनीतिकरण कर रहे है| दूसरा प्रश्न यह होता है की जब इतने सालो से इस प्रथा(मरे हुए जानवरों को निम्न जाती के लोगो द्वारा उठाना) से कोई समस्या नही थी तो अब अचानक से क्यों?

इन प्रश्नों से पता चलता है की भारतीय मुख्यधारा की मीडिया दलित लोगों और उनसे संबंधित मुख्य प्रश्नों से भटकने का प्रयास कर रहे है जो समस्या है उसको उठाने ही नहीं दिया जा रहा।[73]

पत्रकारिता में दलित समुदाय के लोगों के साथ शोषण के मामलों की अभिव्यक्ति से यह सिद्ध होता है कि आजादी के बाद भी सामाज में लोकतांत्रिक चेतना का विकास नहीं हुआ है। उनकी एक बड़े समुदाय के प्रति इस प्रकार की अभिव्यक्ति लोकतंत्र के इस चौथे खम्भे पर प्रश्न उठाते है। 11 जुलाई 2016 को चार दलित मरी हुई गाय को लेकर जा रहे थे जो कि वंशानुगत उनका पेशा था। परंतु, कुछ लोगों ने जो कि स्वयं को गोरक्षक बताते थे, ने उन पर हमला कर दिया गोरक्षा के जुर्म में उन्होंने स्वयं फैसला सुनाते हुए उन लोगो के साथ पिटाई की। हालांकि उन लोगों ने उनको बताया कि उन्होंने गाय को नहीं मारा हैं। ये पहले से मरी हुई थी व उन गायों को यह से ले जाना उनका काम हैं। परंतु, उनकी बात को अनसुना करते हुए गोरक्षकों ने उनकी पिटाई जारी रखी व मारते हुए उन्हें उना(गुजरात) शहर ले गये।

5 अगस्त 2016 को 10 दिन कि दलित अस्मिता यात्रा प्रारंभ हुई अहमदाबाद में जो कि चार दलितों को बुरी तरीके से पीटने के खिलाफ थी। इस दलित यात्रा में बहुत से दलित नेता व दलितों ने भाग लिया परंतु, देखने कि बात यह हैं की इस यात्रा को मुख्यधारा कि मीडिया द्वारा पूर्ण रुप से अनदेखा किया गया। अखबारो में इस आंदोलन को जगह तो मिली परंतु, उसको लिखने का तरीका अलग था *द हिंदुस्तान टाइम्स* में इस घटना से संबंधित जमीनी स्तर की समस्याओं की बात ना करते हुए उनकि इस ख़बर का मुख्य आधार रहा कि इस रैली में कन्हैया कुमार ने भाग लिया। जबकि कन्हैया कुमार(जवाहर लाला नेहरु विश्वविध्यालय के पूर्व प्रेसिडेंट)

[73] https://www.youtube.com/watch?v=-k2mCPCPEj0&t=29s तारिख- 22/7/2017

का इस रैली से दूर दूर तक कोई लेना देना नहीं था कहीं ना कहीं प्रिंट मीडिया का यह लिखने का तरीका दिखाता हैं कि वह अपनी वास्तविक जिम्मेदारियों से किस प्रकार पीछे हट रहे हैं? अर्थात उन्होंने दलितों से संबंधित समस्याओं कि बात ना करते हुए कन्हैया कुमार के तरफ लोगों का ध्यान उस तरफ खींचने का प्रयास किया। यह केवल एक अख़बार की कहानी नहीं हैं कई अख़बारों में इसे छापा ही नहीं गया। जिन अख़बारों में छापा गया उसमें इसे अलग तरीके से पेश करने का प्रयास किया गया।[74]

जो दलित महिलाएं इस रैली में शामिल होने आई थी उनके प्रति भी मीडिया का कुछ अच्छा व्यवहार नहीं था। ना ही उनको अपनी ख़बरो के कॉलम में जगह दी गई। इस रैली में राधिका वेमुला एक मुख्य दलित महिला थी जो कि अपनी बात लोगों के सामने रख रही थी। परंतु, मीडिया ने उनको ना दिखाते हुए कन्हैया कुमार को अपनी हेडलाइन बनाया। मीडिया के लिए क्या दिखाने योग्य है यह वही निर्धारित करता है चाहे उस से उसकी प्रासंगिकता जुडी हुई हो या नहीं। इस प्रकार कि ख़बरो को गढ़ने का तरीका वह प्रिंट मीडिया किस प्रकार तैयार करता हैं या यह प्रक्रिया किस प्रकार तैयार होती हैं। दलितों का संघर्ष मीडिया किस प्रकार से लिख रहा हैं वह मीडिया का चरित्र दिखाता हैं।

मुख्यधारा कि मीडिया द्वारा दलित महिलाओं को इस प्रकार अनदेखा करना दलित महिलाओं के लिए स्वयं का एक मंच ढूंढने के लिए प्रेरित करता है। दलित व अल्पसंख्यक ही नहीं अन्य समुदाय से आने वाली महिलाएं भी अपना मंच तलाश रही है।

ध्रुवो ज्योति एक पत्रकार हैं। जिन्होंने राउंड टेबल इंडिया, में एक लेख लिखा जिसमें वह बताते हैं कि किस प्रकार ऊना कि घटना व इसके लिए हो रहे प्रतिरोध से ज्यादा जरुरी मीडिया के लिए यूपी इलेक्शन महत्वपूर्ण हो गए। ध्रुवो कहते हैं कि यह स्वर्ण जाति पर आधारित समाचार कक्ष बहुत ही क्वालीफाइड हैं। जिसमें बहुत ही पढ़े-लिखे पत्रकार हैं, जो कि स्वतंत्र सोच रखते हैं। जो

[74] http://www.hindustantimes.com/india-news/massive-dalit-gathering-in-una-marks-end-of-10-day-protest-rally/story-9WEcJGIdMze9m4zigrtf9K.html तारिख-10/7/2016

कि यह मानते हैं की उनको स्वतंत्र रूप से बोलने का अधिकार हैं। परंतु, फिर भी यह दलितों से संबंधित कवरेज नहीं करते। क्योंकि इनका मानना हैं की जाति नाम कि कोई चीज होती ही नहीं हैं आगे कहते हैं कि यह जब तक नहीं बदल सकता। जब तक न्यूज़ रूम में अत्यधिक मात्रा में दलित आदिवासी पत्रकार नहीं होंगे इसीलिए जरूरी हैं की दलित घटनाओं को दलितों के दृष्टिकोण से देखा जाए जिसे मुख्यधारा के मीडिया शुरू से ही नजर अंदाज करती आई हैं। वह इस में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं।[75] राउंड टेबल इंडिया, दलित कैमरा आदि जैसी वैकल्पिक आवाज होना जरुरी हैं जो कि लगातार दलितों से संबंधित ख़बरो को लोगों के सामने लाते रहे हैं। दलितों की आवाज बनकर लोगों के सामने आए हैं व मुख्यधारा मीडिया को सच्चाई का आईना दिखाते रहे हैं। मीडिया का दूसरा चरित्र भेदभावपूर्ण हैं। इसका एक कारण यह भी हैं की संपूर्ण मीडिया में दलितों का प्रतिनिधित्व बहुत कम हैं। इसी कारण वह केवल एक खास वर्ग को प्रदर्शित करते हैं। वह यह मानते हैं कि एक खास प्रकार का ग्राहक ही उनकी अख़बारों को खरीद रहा हैं या पढ़ना चाहता हैं।

[75]धुबो ज्योति,कवरिंग अटरोसिटीस इन ए सवरना न्यूज़रूम, 10 अगस्त 2016' राउंड टेबल इंडिया

अध्याय - 3

दलित महिला पत्रकारों के अनुभव और संघर्ष

दलित महिला पत्रकारों के अनुभव और संघर्ष

> "दलित महिलाएं जब भी अपनी कहानी लिखती है, तो उनका लेख "मैं" पर अधारित ना होकर "हम" पर आधारित होता है, जो अपने समुदायों और संस्कृति की कहानी बयां करती है इसलिए दलित महिलाओं का लेखन पुरुष से भावनात्मक, राजनीतिक रूप से अलग होता है इसलिए दलित महिलाओं की आत्मकथा को शर्मीला रेगे testimonios कहती है|"[76]

स्त्री विमर्शो में आत्म-अनुभव अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाते है जब वह कुछ खास जनसमुदाएं और लोगो के हों। अनुभव वह नहीं है जो हम उस समय सोच रहे होते हैं, अनुभव वह हैं जो हमारी पूरी जिंदगी में हुआ होता है। आज के समय में हम जो है वह उन्हीं अनुभवों का निष्कर्ष होता है, जैसे एक दलित व्यक्ति की अस्मिता का निर्माण उसके जन्म से नहीं होता। परंतु, उसके कटु अनुभव ही उसकी दलित अस्मिता का निर्माण करते है। यही कारण है कि हर क्षेत्र से आने वाले अनुभव एक अलग प्रकार की कहानी बयां करते हैं, जैसे की पत्रकारिता क्षेत्र से, यदि हम किसी पुरुष का अनुभव पूछेंगे तो वह अलग तरह का होगा। दलित स्त्री के अनुभव जानने का प्रयास करेंगे तो उनकी कहानी हो सकती है कि इन सब से अलग हो, या हो सकता है कि इनके जैसी ही हो। इसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने शायद अपनी अस्मिता छुपाई हो जो कि वास्तव में हो रहा है, आज के पत्रकारिता क्षेत्र की सच्चाई यही है। परंतु ऐसा क्यों हो रहा है? यह महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि अस्मिता(identity)

---

[76] रेगे शर्मीला.राइटिंग कास्ट,*राइटिंग जेंडर: रीडिंग दलित वीमेनस टेस्टीमोनिओस.* जुबान, 2006 पेज न. 13-15

.

एक ऐसा विषय है जिस पर जब हम अध्ययन करना प्रारंभ करते है तो वह केवल पुस्तकों और सिद्धांतो तक ही सीमित रहता है। परन्तु, इस प्रकार के प्रश्नों से जब हम हकीकत में लोगो को जीते हुए देखते है तो ज्ञात होता है कि अस्मिता एक जटिल वास्तविकता है। पत्रकारिता में दलित समुदायों से आने वाले लोग मजबूर है अपनी अस्मिता छुपाने के लिए क्योंकि हमारी मीडिया का पूरा चरित्र पूर्वाग्रही मानसिकता या वर्चस्वशाली मूल्यबोधों से संचालित हो रहा है। इसी कारण मैंने अपना शोध **"मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान व् प्रस्तुति"** प्रारम्भ किया। मैं चाहती थी मेरा अंतिम अध्याय दलित महिला पत्रकार के अनुभवों पर आधारित हो। मैं दो से तीन दलित महिला पत्रकारों के अनुभवों को एकत्रित कर उसको विश्लेषित करना चाहती थी। परंतु, यह उतना सरल नहीं था जितना मैंने सोचा था। क्योंकि प्रिंट मीडिया में दलित महिला पत्रकार का मिलना अत्यधिक मुश्किल रहा। मीडिया संस्थान में दलित समुदायों के लोग चाहे पुरुष हो या स्त्री जो काम करते हैं उनके प्रति पूर्वाग्रही सोच होती है जिसके कई कारण है। उसकी पड़ताल करना ही इस शोध का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए कुछ पत्रकारों, दलित साहित्यकारों के साक्षात्कार किये। जिसमें दो महिला पत्रकार को यूनियन में सक्रीय भूमिका निभा रही है, वरिष्ठ पत्रकार एंव जनमीडिया पत्रिका के संपादक अनिल चमाड़िया, दलित लेखिका अनिता भारती, और "द वायर" में दलित महिला पत्रकार के भाषण को शामिल किया है।

दलित समुदाय के लोग इस विश्वास के साथ मीडिया में प्रवेश करते हैं कि वह समाज में परिवर्तन रखने की क्षमता रखते हैं। वह अपने समुदाय को मीडिया के माध्यम से सशक्त कर सकते हैं| परंतु, मीडिया के अंतर्गत जातिगत भेदभाव अनियंत्रित रूप से व्याप्त है, चाहे वह कोई भी भाषाई मीडिया संस्थान हो।

एजाज अशरफ ने दलित समुदायों के लोगों का मीडिया से दूरी के कारणों को समझने का प्रयास करने का प्रयास किया। वह जानना चाहते थे कि मीडिया में दलितों की भागीदारी का कारण क्या केवल एक कारण भेदभाव है? या अन्य और भी कारण है? "इसे जानने के लिए उन्होंने 21 दलित जनर्लिस्ट से संपर्क साधा। उनके बचपन से लेकर मीडिया संस्थान के

अनुभव और पत्रकारिता छोड़ने के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया। आईआईएमसी(IIMC) में वर्ष 1965 से आरक्षण लागू हो गया था। यही कारण है कि एजाज ने इस संस्थान को चुना, वह जानना चाहते थे कि इसमें कितने दलित छात्र मीडिया की पढ़ाई के लिए आ रहे हैं और यदि वह आ रहे हैं तो वह आगे मीडिया संस्थानों में क्यों नहीं है? उनके विश्लेषण करने के पीछे एक कारण बी.एन. उनियाल का वह लेख रहा जिसके तहत भारतीय मीडिया संस्थानों में उन्हें एक भी दलित पत्रकार नहीं मिला था।"[77] बी.एन उनियाल (1996) मे अपने लेख "रिसर्च फॉर ए दलित जनर्लिस्ट" में यह कहा कि उन्हें खोजने पर भी एक भी दलित जर्नलिस्ट नहीं मिला।[78] रॉबिन जेफरी बताते हैं कि जब वह अपनी भारतीय भाषा न्यूज़ पेपर के लिए शोध कर रहे थे उन्हें एक भी दलित पत्रकार नहीं मिला। वह 10 साल तक 20 शहरों में घूमे दर्जनों न्यूज़ पेपर में कम से कम ढाई सौ लोगों का साक्षात्कार किया। परंतु, एक भी दलित नहीं मिला।[79]

परंतु, विचारणीय बात यह थी कि संस्थानों में आरक्षण है और दलित छात्र पत्रकारिता की शिक्षा के लिए भी आ रहे हैं, फिर वह पत्रकारिता के क्षेत्र में क्यों नहीं आ रहे हैं? इसके लिए एजाज ने आईआईएमसी(IIMC) से दलित छात्रों का एक ब्यौरा मांगा, उन सभी छात्रों से संपर्क बनाने के लिए परंतु, ऐसे कई कारण थे जिनके कारण उनसे बात नहीं हो पाई। कुछ लोगों ने उनको साक्षात्कार देने से इन्कार कर दिया। कुछ ने कोई बहाना बना दिया और विभिन्न प्रकार के अलग-अलग कारण दिए। कुछ ऐसे भी थे जो बात नहीं करना चाहते थे। यही कारण था कि 100 छात्रों की सूची में सिर्फ 21 छात्रों को शॉर्ट लिस्ट किया गया। जो पत्रकारिता में काम कर रहे थे, जिनमें से एक ओबीसी था, इनमे से पत्रकारिता के क्षेत्र में 10 हिंदी पत्रकारिता में काम कर रहे थे, 8 अंग्रेजी पत्रकारिता, दो तेलुगु में व एक प्रसार भारती में काम कर रहे थे। इन 21 पत्रकारों ने शर्त रखी कि उनका नाम बदला जाए। एजाज

[77] एजाज अशरफ,. "द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ़ दलित जर्नलिस्ट." *द हूट.* (2013).

[78]बी.एन. उनियाल. "इन सर्च ऑफ़ ए दलित जर्नलिस्ट." *द पायनियर* 16 (1996).

[79] रोबिन जेफ्री,"भारत में समाचार पत्र क्रांति" अनु. डा. सत्यकाम, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, 2004,

अशरफ द्वारा इन सभी लोगों से बात करने के बाद कुछ मुख्य बाते, इस प्रकार निकलकर आई।

- जो भी दलित पत्रकारिता में पढ़ने के लिए आते थे वह इस सोच के साथ आते थे कि वह अपने समुदाय को सशक्त करेंगे और वह उनकी आवाज लोगों तक पहुंचाएंगे।
- दूसरा दलितों का अधिकतर भागीदारी हिंदी में थी, दूसरा भारतीय भाषा में, तीसरा अंग्रेजी में थी।
- तीसरी बात भेदभाव एक कारण है जिसके कारण दलित मीडिया में बने नहीं रह पाते वह इसे छोड़ कर चले जाते हैं। यह भी बहुत बड़ा कारण है कि हिंदी व भारतीय भाषाई मीडिया में उन्हें खासतौर पर जातिगत भेदभाव सहना पड़ता है।
- हालांकि सभी ने माना है कि भेदभाव एक मुख्य कारण है जिसके कारण अधिकतर दलित प्राइवेट सेक्टर मीडिया को छोड़ देते हैं वह गवर्नमेंट जॉब की तैयारी में लग जाते हैं या वह सरकारी नौकरियों को प्राथमिकता देने लगते हैं।
- पांचवा मुख्य कारण कि भेदभाव तो है परंतु दलितों को मीडिया का क्षेत्र स्थायी सुरक्षा नहीं देता। उन्हें हमेशा एक असुरक्षात्मक भावना रहती है कि उन्हें कभी भी निकाल दिया जा सकता है। इसका एक कारण यह भी है कि प्रिंट मीडिया अधिकतर निजी क्षेत्रो के हाथों में है। यही कारण है की इस क्षेत्र में स्थायी नियुक्तियां नहीं हो रही है।
- छठा, जो भी दलित पत्रकारिता के क्षेत्र में आते हैं उनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं होती है कि वह जॉब की असुरक्षा के बाद भी सुचारु रुप से अपना कार्य जारी रखें। उनके लिए जरूरी होता है कि उनको एक स्थाई नौकरी मिले जिसके कारण सरकारी नौकरीयों के प्रति ज्यादा अग्रसर होते हैं क्योंकि उनमें उनको सुरक्षा की भावना नजर आती है।[80]

दलित समुदाय के लोगों की भागीदारी पर तमाम तथ्य जिसकी शुरूआत उनियाल के लेख से हुई, वह कहीं ना कहीं समाज के समक्ष एक सच्चाई पेश करता है। अनिल चमड़िया जो कि मीडिया स्टडीस ग्रुप के संस्थापक है, उन्होंने(2006) में जितेन्द्र कुमार(स्वतंत्र शोधकर्ता) और

[80] एजाज अशरफ ,द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ दलित जनर्लिस्ट रिपोर्ट, ,द हूट ,12/ 8/ 2013,

सामाजिक विकास अधयन्न केंद्र(CSDS) के सीनियर फेलो योगेन्द्र यदाव के साथ मिलकर एक सर्वे किया। यह सर्वे 37 मीडिया संस्थानों पर आधारित था जिसमें उन्होंने दलित किस पद पर है? यह ज्ञात करने का प्रयास किया कि मीडिया संस्थान में फैसले लेने वाले पदों पर किस जाती के लोग है ? इस अध्ययन ने निम्न तथ्यों का खुलासा किया :-

	ब्राह्मण	कायस्थ	वैश्य/जैन	राजपूत	खत्री	गैरद्विज उच्चजाति	अन्य पिछड़ी जाति
प्रिंट हिंदी	59%	9%	11%	8%	5%	0%	8%
प्रिंट अंग्रेजी	44%	18%	5%	1%	17%	5%	1%
इलेक्ट्रॉनिक हिंदी	49%	13%	8%	14%	4%	0%	4%
इलेक्ट्रॉनिक अंग्रेजी	52%	13%	2%	4%	4%	4%	4%
कुल	49%	14%	7%	7%	9%	2%	4%
कुल आबादी में हिन्दू उच्चवर्ण पुरुषो की हिस्सेदारी 8%							
मीडिया में फैसले लेने वाले पदों पर हिस्सेदारी 71%							

- राष्ट्रीय मीडिया में देश की सामाजिक विविधता की तस्वीर दिखाई नहीं देती है। विभिन्न स्तरों पर जाति, वर्ग, धर्म और महिलाओं का घोर अभाव है।

- हिन्दू उच्च जाति के पुरुषो का राष्ट्रीय मीडिया पर वर्चस्व है। भारत की कुल आबादी में इनकी हिस्सेदारी आठ प्रतिशत है, लेकिन मीडिया संस्थानों में फैसला लेने वाले पदों में 71% उनके हिस्से में आता है।
- राष्ट्रीय मीडिया में विभिन्न जातियो के प्रतिनिधित्व में असमानता है। द्विज हिन्दुओ(द्विजो में ब्राहमण,कायस्थ,राजपूत,वैश्य और खत्री शामिल है) की जनसंख्या 16% है।परंतु, मीडिया में प्रमुख पदों पर उनकी हिस्सेदारी 86% है। केवल ब्राहमण (इसमें भूमिहार, त्यागी भी शामिल है) के हिस्से में 49% है।
- दलित और आदिवासी फैसले वाले पदों पर नहीं है। राष्ट्रीय मीडिया के 315 प्रमुख पदों में एक भी दलित और आदिवासी नहीं है।
- **दोहरे स्तर पर भेदभाव का शिकार होने वाले सामाजिक समूहों की उपस्थिति लगभग नगण्य है। प्रमुख पदों पर पिछड़ी जाति की महिलाएं नहीं है।**[81]

मीडिया संस्थान में दलित समुदायों की भागीदारी संख्या में कमी के कारणों को उपरोक्त तथ्य बयां कर देते है। मीडिया संस्थान की मानसिकता का जायजा "कास्ट इन द न्यूज रूम" लेख से लिया जा सकता है जब दिलीप अवस्थी जो कि सीनियर एडिटर हैं दैनिक जागरण के उनसे बात की गई थी। जब अवस्थी जी से पूछा गया कि न्यूज़रूम में बहुत कम दलित पत्रकार क्यों है? अवस्थी जी ने जवाब दिया कि वह स्कूल नहीं जाते। जब पूछा गया क्या आप किसी एक भी एससी/ओबीसी पत्रकार से मिले हैं या आप ने उनका इंटरव्यू या साक्षात्कार किया है तो उन्होंने कहा नहीं वह एक लाइन भी इंग्लिश में नहीं लिख सकते।[82] दिलीप अवस्थी की बात पत्रकारिता संस्थान की मानसिकता को बयां करता है| दलित पत्रकार को नौकरी ना देने के पीछे इसी प्रकार के कारणों को जवाब का आधार बनाया जाता है। इसी प्रकार के अनुभवों के कारण ही दलित व्यक्ति की दलित अस्मिता का निर्माण होता है।

दलित पहचान या जो दलित होने की भावना है वह अचानक से भेदभाव के कारण नहीं आती है। बचपन से दलितों के साथ भेदभाव होता हैं। बचपन से लेकर जब नौकरी पर जाते हैं तब

[81] राष्ट्रीय मीडिया का सर्वे, चौत्था पन्ना,मीडिया स्टडीज ग्रुप(रोहिणी दिल्ली), 2006

[82]कास्ट इन द न्यूज़रूम, शिवम् विज, रीजनल मीडिया, **लखनऊ**, 24/06/2004, द हूट

तक का उनका पूरा सफ़र भेदभाव की प्रक्रिया से होकर गुजरता है। वह प्रक्रिया उनको उनकी दलित पहचान से अवगत कराती है व वह उनकी दलित अस्मिता का निर्माण करती है। जिससे वह इस अनुभव के बाद वाकिफ होते हैं। यही कारण है कि हमें इस प्रक्रिया को समझना होगा। यदि हम पत्रकारों के अनुभव जानना चाह रहे हैं तो हमें उनके बचपन को जाने बिना सिर्फ उनके नौकरी के आधार पर यानी केवल पत्रकारिता में अनुभव के आधार पर उनके अनुभवों को विश्लेषित नहीं कर सकते हैं। इसके लिए ज़रूरत है कि हम उनके बचपन के अनुभवों को भी एकत्रित करें,उनको समझने का प्रयास करें कि उनके दलित बनने की प्रक्रिया क्या है जिससे वह गुजरते हैं ?

एजाज अशरफ ने जिन दो दलित पत्रकारों का साक्षात्कार किया था। उसमें से एक संतोष वाल्मीकि है जो प्रिंसिपल कोरस्पांडेंट है, वह लखनऊ दूरदर्शन के लिए भी न्यूज़ पढ़ते हैं। उनका बचपन गरीबी में रहा है उनके पिता एक ड्राइवर थे। उनकी मां हाउस वाइफ थी। जब उनके पिता लोगों के घर बाथरूम साफ करने जाया करते तो वह भी अपने पिता के साथ जाया करते थे। लेकिन उनके पिता ने उनके लिए कड़ी मेहनत की। उनके लिए पैसे बचाएं और उनको पढ़ाया। जब वह लखनऊ के क्रिश्चियन कॉलेज गए तब उन्हें ज्ञात हुआ कि दलित होना क्या होता है? वहां उनको हर स्तर पर यह याद दिलाया गया कि आप एक दलित हैं जिसके कारण वह कहते हैं कि- उन्होंने दलित बनने की प्रक्रिया को तब जाना जब वह पढ़ रहे थे। उन्होंने अपने जीवन के प्रारंभिक समय से ही काम करना प्रारंभ कर दिया था। वह सुबह के समय अख़बार बेचते थे। वहीं से उन्होंने पत्रकार बनने का मन बनाया। इसीलिए उन्होंने IIMC की परीक्षा दी। परीक्षा पास कर जब वह साक्षात्कर के लिए गये तो उनसे पूछा गया कि आप न्यूज़पेपर पढ़ते हैं? आप कितने न्यूज़पेपर पढ़ते हैं? वाल्मीकि ने कहा, हां में दिन मे नो अख़बार पढ़ लेता हूं। यह सुन सभी अचंभित थे, वह नौ न्यूज़पेपर पढ़ते हैं। उनका पढ़ने के लिए संघर्ष न्यूज़पेपर बेचने के दौरान ही प्रारंभ हो गया था। उनको आगे पढ़ने के लिए आर्थिक मदद के रूप में 15000रू० की स्कॉलरशिप मिली।

आईआईएमसी(IIMC) में कॉन्वोकेशन सेरेमनी के समय जब यूनियन मिनिस्टर के.आर नारायणन ने उनको अवार्ड दिया और जब वह फोटो अख़बारों में छपा तो उनके व उनके समुदाय के लिए यह गर्व का समय था। जिसके कारण वाल्मीकि समुदाय के वह जाने माने नाम बन गए थे और लोग उनको इज्जत से देखा करते थे। अपने पत्रकारिता के अनुभव बताते हुए वह कहते है कि उन्हें उनकी काबिलियत के अनुसार वह पद नहीं मिला जिसके वह काबिल थे। वाल्मीकि बताते है की उनके जूनियर अब एडिटर हो चुके हैं लेकिन अभी भी वह प्रिंसिपल कोरस्पांडेंट ही हैं।

वेद प्रकाश दूसरे दलित पत्रकार है जिनका साक्षात्कार एजाज अशरफ ने किया था। उस समय वेद प्रकाश टोटल टीवी में असिस्टेंट प्रोडूसर थे। वह बताते हैं कि दलित क्या होता है? यह उन्हें बचपन में तब महसूस हुआ जब उन्होंने एक ऊंची जाति के बच्चे को एक दलित बुजुर्ग से बात करते हुए देखा। उस बच्चे की बातों में उस दलित बुजुर्ग के प्रति आदर व सम्मान कहीं नहीं था यह उनके लिए अत्यधिक अचंभित करने वाला अनुभव था।

वेद प्रकाश के पिता बिहार के रिवेन्यू डिपार्टमेंट में क्लर्क थे। एजाज अशरफ बताते हैं की वेद प्रकाश से उनकी मुलाकात बहुत ही रोचक थी। उनसे मुलाकात जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में हुई। वेद प्रकाश गंगा ढाबा पर लोगों से बात कर रहे थे। जेएनयू का गंगा ढाबा वार्तालाप के लिए एक अच्छी जगह है जहां आप अपने विचारों को रख सकते हैं और उसकी आलोचना भी सुन सकते हैं। जब वेद प्रकाश से बात की तो उन्होंने कहा कि मैं मीडिया में दलित भागीदारी को बढ़ाना चाहता हूं। इस से हमारे समाज के सामाजिक ढांचा जो वर्ण व्यवस्था पर आधारित है, उसको चुनौती मिलेगी और यह जरूरी भी है। वेद प्रकाश में यह इच्छा इसलिए जागृत हुई क्योंकि उन्होंने जातिगत भेदभाव को देखा था। वेद प्रकाश नवादा में प्राइमरी स्कूल के अध्यापक रह चुके हैं। इसी बीच उन्होंने अपना एम.कॉम कंप्लीट किया। प्रकाश को पत्रकारिता के क्षेत्र में खासा रूचि थी क्योंकि उनको लगता था की वह इसी के द्वारा जातिगत भेदभाव वाली व्यवस्था को चुनौति दे सकते है। इसलिए उन्होंने मास कम्युनिकेशन ऑफ नालंदा ओपन यूनिवर्सिटी में नामांकन भी किया। वेद प्रकाश बताते है कि ऊंची जाति

वाले अध्यापकों के बीच में एक दलित अध्यापक के रूप में काम करना बहुत ही बुरा अनुभव था। यह उनके लिए बहुत मुश्किल समय था। अपने अध्यापक के रूप में अनुभव को साझा करते हुए बताते हैं कि "एक दिन जब वेद प्रकाश ने किसी बच्चे के पुस्तक में जो गलत लिखा हुआ था उसको लाल पेन से अंडरलाइन किया जो कि एक ऊंची जाति के अध्यापक द्वारा पढ़ाया गया था। यह ऊंची जाति वाले अध्यापक को बर्दाश्त नहीं हुआ। उनको लगा कि उनके ज्ञान पर चोट की जा रही है।"

शिक्षा या पत्रकारिता के संसथान में कुछ सवर्ण जाती के लोगों की सोच पूर्वाग्रही है। वह यह स्वीकार ही नहीं करना चाहते कि निम्न समुदायों के पास भी ज्ञान हो सकता है। यदि उन्हें उनकी सोच के प्रति चुनौति मिलती है तो वह इसे स्वीकार नही करना चाहते। फिर वह ऐसे कदम उठाते हैं जैसा की वेद प्रकाश के खिलाफ उठाया गया।

सवर्ण जाति के अध्यापक द्वारा उन्हें भरे बाजार में वेद प्रकाश से बदतमीजी की व उनको वहां मौजूद सभी लोगों के सामने मारा गया। वेदप्रकाश ने शेडूल कास्ट एंड आदिवासी प्रिवेंशन ऑफ Attrocities एक्ट के अंतर्गत उस टीचर के खिलाफ केस किया। तभी उन्होंने फैसला किया कि वह आईआईएमसी(IIMC) का एग्जाम देंगे और अंत में उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। परंतु, आज वह पत्रकार के रूप में टोटल टीवी में सिर्फ और सिर्फ 8000 रुपय के वेतन पर काम कर रहे हैं जो कि उनके अनुसार 8000 से ज्यादा उन्हें रिक्शा चला कर भी मिल सकता हैं। चूँकि उनका लक्ष्य समाज में कुछ बदलाव लाने का है जिसके कारण वह पत्रकारिता में बने हुए हैं। हालांकि उनके लिए इतने पैसों में इज्जत के साथ दिल्ली जैसे शहर में रहना बहुत मुश्किल है।[83]

उपरोक्त उदाहरण मीडिया संस्थानों में दलित समुदायों के अनुभव वास्तविकता के कड़े यर्थाथ को बयां करते है। ये अनुभव और अधिक चुनौतिपूर्ण तब हो जाते है जब महिला पत्रकारों से या स्थापित महिला पत्रकारों से भी इस तरह के स्थितियों का पता चलता है। महिलाओं का

[83] एजाज अशरफ ,द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ दलित जनर्लिस्ट रिपोर्ट, ,द हूट ,12/ 8/ 2013,

अनुभव यह स्थापित करता है कि मीडिया संस्थानों में दलित समुदायों और महिला पत्रकारों के संदर्भ में समानता और स्वतंत्र कार्य स्थितियों के बारे में बात करना दूर की कौड़ी लाने के बराबर है।

चूँकि मेरा यह अध्याय पत्रकारों के अनुभव पर आधारित है इसलिए अपने शोध के लिए कुछ महिला पत्रकारों का साक्षात्कार किया। जो पत्रकारिता में महिलाओं की स्थिति, पत्रकारिता में दलितों की भूमिका व यूनियन में आने वाली समस्यओं पर गहन दृष्टि डालती है। इसमें पहला साक्षात्कार सुजाता माधोक का है।

सुजाता माधोक आईआईएमसी(IIMC) से पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त कर चुकी है। जब सुजाता माधोक ने पत्रकारिता प्रारंभ की तो टेलीविज़न पत्रकारिता से ज्यादा प्रिंट पत्रकारिता का दौर था। जिसके कारण उन्होंने प्रिंट पत्रकारिता में काम करने का मन बनाया। परंतु, यहाँ यह भी जानना जरुरी है कि उनको नौकरी उनके शैक्षिक सर्टिफिकेट/डिप्लोमा के आधार पर नहीं बल्कि अपने दोस्त की जगह खाली होने पर मिली थी। 90 के दशक से पहले तक पत्रकारिता की नौकरी के लिए पत्रकारिता की शिक्षा की जरुरत नहीं थी। भूमंडलीकरण के बाद इसकी जरुरत पड़ी और मीडिया संस्थानों द्वारा डिप्लोमा माँगा जाने लगा। हालांकि वह यह भी बताती है कि प्रारंभ में मधोक को पत्रकारिता के क्षेत्र में इतनी रूचि नहीं थी। परंतु, धीरे-धीरे उन्हें ये काम समझ में आने लगा और उन्हें अच्छा लगने लगा।

यही कारण है कि माधोक पत्रकारिता के लिए ट्रेनिंग को जरुरी मानती है। उनका मनना है कि यह एक अच्छा तरीका है पत्रकारों का उनके काम के प्रति रूचि बढ़ाने के लिए और इस से उन्हें किसी एक विषय में विशेषज्ञ बनाकर काम ज्यादा अच्छा कराया जा सकता है।

सुजाता माधोक अपने पत्रकारिता का अनुभव बताती है कि उनको एक साल तक अपॉइंटमेंट लैटर ही नहीं मिला था। एक दिन अचनाक से उन्हें कहा गया की उनको नौकरी से निकाला जा रहा है जबकि उस समय वह उस पत्रिका के लिए एक यूथ कॉलम भी लिख रही थी

जवाब में उन्हें कहा गया की यह पत्रिका बंद हो रही है। माधोक द्वारा अन्य पत्रिका व अख़बार में नौकरी की मांग पर उन्हें कहा गया कि वह "डेस्क पर महिलाओं को नहीं रखते।"[84]

माधोक पत्रकारिता में समस्याओं का जिक्र करते हुए बताती है कि यह एक प्रकार का हैरार्की है। जरुरी नहीं की इसे महिलाओं को बहिष्कृत किया जा रहा है यह पुरुष प्रधान सोच पर काम करता है। हैरार्की जारी तो रहती है परंतु उसको जारी रखने में महिलाएं भी महत्व्पूर्ण भूमिका अदा करती है। इस क्षेत्र में वही महिलाएं सफलतापूर्वक काम कर सकती है जो कि उस पुरुष प्रधान सोच मे फिट हो जाती थी। जो उनके अनुसार काम करती थी व इस सत्ता या शक्ति के ढांचे को बनाये रखने में पुरुषो की मदद करती थी। वही महिलाएं उसमे काम कर पा रही थी। माधोक उदाहरण देकर बताती है की वह "मुस्लिम महिला के केस(शाह बनो) केस पर लिखना चाहती थी, संपादक से बात का जिक्र करते हुए, वो बताती है कि -

> "मैं (शाह बानो केस) विषय पर लिख सकती हूं, मैंने लिख कर उन्हें दिया। परंतु,उन्होंने उसको छापा नहीं, उनको उससे समस्या थी जो उन्होंने सीधे तौर पर मुझे कहा भी नहीं। वहां एक सीनियर महिला पत्रकार थी उन्होंने उनसे बात की आप कुछ करें तो उन्होंने कुछ लोगों के इस विषय पर इंटरव्यू करके इस मुद्दे पर लेख लिखा। वो प्रिंट भी हुआ कोने में छोटी सी जगह मेरे लेख को दी गयी।"[85]

---

[84] निजी शक्षातकर **सुजाता मधोक, पत्रकार, एक्स यूनियन प्रेसिडेंट, 17 dec 2016 ,11:10 A.M दिल्ली**

[85] निजी शक्षातकर **सुजाता मधोक, पत्रकार, एक्स यूनियन प्रेसिडेंट, 17 dec 2016 ,11:10 A.M दिल्ली**

माधोक बताती है की पुरुष प्रधान सोच द्वारा बनाऐ गये इस फ्रेम मे कौन फिट होगा। कौन नहीं यह पुरुष निर्धारित करते थे। ऐसे में उसमें दलित महिलाओं को जगह मिलना बहुत मुश्किल है। पहला, दलित पुरुष का ही इस क्षेत्र में कार्य कर पाना मुश्किल हो रहा है, तो महिलाएं अपनी अस्मिता के साथ कैसे काम करेंगी? यह समझना अत्यधिक मुश्किल है। दूसरा, जो यह फ्रेम बनाया गया है उसमें शक्ति संबंध बना हुआ है। उस शक्ति संबंध के मध्य आकर दलित महिला स्वयं को सबसे दबे हुए पायदान पर ही पायेगी।

पुरुष प्रधान सोच को लागू करने के तरीके अलग-अलग प्रकार के होते है। उसके बावजूद यह समय की मांग थी कि महिलाओं व उनसे जुड़े मुद्दों को नजरंदाज नहीं किया जा सकता था। क्योंकि उस समय महिला आंदोलन चरम पर था, लोग महिलाओं से जुड़े मुद्दों को पढ़ना चाहते थे। हालांकि यह अलग विषय है कि अख़बारों में उनको लिखने का तरीका अलग था। महिलाएं भी पत्रकारिता में क्रांतिकारी सोच के साथ आ रही थी। परंतु, उसके बावजूद उन महिलाओं को वह स्थान नहीं मिला। अख़बारों को उनसे जुड़े मुद्दे तो चाहिए थे परंतु स्थायी रूप से नौकरी करने के लिए महिलाएं नहीं चाहिए थी। यह आज की स्थिति के ही सामान है कि अख़बारों को दलितों की हिंसा से जुड़ी हुई खबरें तो चाहिए। परंतु, स्वयं दलित पत्रकार नहीं चाहिए। काम करने की परिस्थितियो के बारे में माधोक उनका नजरिया पेश करती है। वह बताती है कि-

> “नाईट शिफ्ट, घर जाने के लिए गाड़ी की सुविधा, मातृत्व छुट्टी आदि महिलाओं की समस्याओ से जुड़ा हुआ है। महिलाओं को नाईट शिफ्ट नहीं दी जाती थी क्योंकि अधिकतर पुरुष पत्रकारों की शराब पीने की आदत थी। पुरुष पत्रकार जो शराब पीने के आदि थे। वह रात में समाचार कक्ष में रुकते थे इसको भी महिलाओं को नौकरी ना देने, महिलाओ की सुरक्षा और उनके

द्वारा नाईट ड्यूटी ना कर पाने को एक कारण बताकर महिलाओ को नौकरी नही दी जाती थी।"[86]

बहुत से मीडिया हाउस सुरक्षा का हवाला देते हुए महिलाओं को नौकरी पर नहीं रखते है। सुजाता माधोक बताती है की जब वह International Federation of Journalism Country Report(2015) के लिए अख़बार मालिकों के साक्षात्कार कर रही थी तो उसमें यह निकलकर आया कि अभी भी महिलाओं को नाईट ड्यूटी का हवाला देकर नौकरी नहीं दी जाती है।

माधोक अपने यूनियन के अनुभव पर बात करते हुए बताती है कि यूनियन में शामिल (1980 लगभग) होने के पीछे उनके अपने निजी अनुभव थे। पहला, वह महिला आंदोलन से जुड़ी थी तो उनको जरुरी लगा कि वह यूनियन से जुड़े। वह पत्रकारों की समस्याओं से वाकिफ हो। दूसरा, उनके निजी जीवन में पत्रकारिता के प्रारंभ में उनको बिना किसी जानकारी के नौकरी से निकल दिया गया था, जिसके कारण वह आहत थी।

यूनियन के बारे में बात करते हुए माधोक बताती है कि यूनियन की सरंचना बहुत ही विकासशील(progressive) थी। वहां विभिन्न विचारधाराओ का समायोजन था, वामपंथी, महिला आंदोलन से जुड़े लोग यूनियन का हिस्सा थे। वह महिलाओं को हर क्षेत्र में आगे रखते थे। माधोक बताती है की पत्रकारिता के क्षेत्र में इतना भेदभाव देखने के बाद यूनियन की वह सरंचना में यह सब चौकाने वाली थी। यूनियन में समस्याओं का जिक्र करते हुए माधोक बताती हैं कि प्रारंभिक समय में वेतन(wages) समस्या नहीं थी। वेज बोर्ड के अनुसार स्केल निर्धारित थे तो उसके अनुसार ही सबको सामान वेतन मिलता था। परंतु, 1990 के बाद परिस्थितियों में बदलाव आया है। निजी क्षेत्र ने लगभग प्रिंट मीडिया पर कब्ज़ा कर लिया है जिसके कारण कॉन्ट्रैक्ट सिस्टम प्रारंभ हो गया है ऐसे में महिलाएं अपनी

[86] निजी शक्षातकर **सुजाता मधोक, पत्रकार, एक्स यूनियन प्रेसिडेंट, 17 dec 2016 ,11:10 A.M दिल्ली**

नौकरी बचाने की जदोजेहद में ही लगी रहती है। दूसरा, वेतन सबका निजी मामला होता है तो कोई भी इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता, जब तक वह व्यक्ति स्वयं ना चाहे।

किसी भी निजी या सार्वजनिक संस्थान में "विशाखा गाईडलाईन्स" ने महिलाओं को उत्पीड़न की समस्या से सुरक्षा प्रदान करने के लिए लागू किया गया था। परंतु, इसपर अमल अधिकतर संस्थानों में देखने को नहीं मिलता है। कई दफे तो महिलाएं भी इससे अनभिज्ञ ही होती है। महिलाओं के साथ शारीरिक उत्पीड़न पर बात करते हुए माधोक बताती हैं कि यह गम्भीर समस्या है। परंतु, समस्या यह है कि कोई भी महिला सीधे तौर इसकी शिकायत लेकर नहीं आती। जब तक उन्हें नौकरी से निकाल नहीं दिया जाता। उसके बाद भी वह शारीरिक उत्पीड़न की समस्या का जिक्र नहीं करती। माधोक बताती है कि बहुत बार बीच में महिलाएं बोलती हैं कि -

> "अगर वह जैसा चाहते थे वो मैं कर लेती तो शायद मेरी नौकरी बच जाती।"[87]

तब हमें पता चलता है की यहाँ नौकरी जाने के साथ-साथ शारीरिक उत्पीड़न की समस्या भी जुड़ी है। जो महिलाएं हिम्मत करके आगे आती भी है तो हमारा न्यायिक व्यवस्था इतनी धीमी है कि उन लड़कियो को पहला तो न्याय नहीं मिल पाता या तो इतनी देर हो जाती है कि उनके हाथ से सब कुछ निकल जाता है, फिर वह बस गुमनामी की जिंदगी बिताती है।

दलित क्यों नहीं हैं? उन से जुड़ी समस्याएं यूनियन में क्यों नहीं आती? इसका जवाब देते हुए माधोक बताती है कि पत्रकारिता में काम करने वाले भी उसी समाज से ही आते है जैसे कि हमारा समाज में सवर्णों का अधिपत्य है। पत्रकारिता में भी वही भेदभाव है, इस क्षेत्र में इस से कोई मना नहीं कर सकता। हमें जरुरत है कि हम U.S की मीडिया हाउसेस से कुछ

[87] निजी शक्षातकर **सुजाता मधोक, पत्रकार, एक्स यूनियन प्रेसिडेंट, 17 dec 2016 ,11:10 A.M दिल्ली**

सीखे। वह वक़्त-वक़्त पर स्वयं का विश्लेषण करते रहते है, जहां कमियां होती है उनको कम के लिए काम करते है। परंतु भारतीय मीडिया में ऐसा नहीं है। यह अपनी कमियां जानना ही नहीं चाहती है।

यूनियन ने कभी भी सीधे तौर पर दलित मुद्दों को नहीं देखा। परंतु वह एक केस का जिक्र करती है जिसमें एक दलित पत्रकार जो चेन्नई से थे, दिल्ली में इंडियन एक्सप्रेस में पत्रकार के रूप में नौकरी कर रहे थे। उनका वेतन बहुत कम था, जब वह बीमार हुआ तो उसके ऑफिस की तरफ से उसे कोई सहायता नहीं मिली। कोई मिलने तक नहीं गया और बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गयी। परंतु, यूनियन इसमें कुछ खास कर नहीं पाई क्योंकि जिसकी यह कहानी थी। अब वो ही नहीं था, इसे बताने के लिए, जिनसे उन्हें लड़ाई लड़नी थी वह बहुत शक्तिशाली थे। यहां सोचने की बात है कि उस व्यक्ति के साथ जातिगत भेदभाव भी हुआ था जब पूरा यूनियन एक व्यवस्था से नहीं लड़ सकता। तो अकेले दलित पत्रकार किस प्रकार इसका सामना करेंगे ? यह भी एक कारण है जिसके कारण दलित पत्रकार अपनी अस्मिता(identity) छुपाते है।

महिलाओं के पत्रकारिता में अनुभव और दलित मुद्दे और दलित सहभागिता के सवालों के संदर्भ में दूसरा साक्षात्कार मैंने अंजलि देशपांडे का किया है।

अंजली देशपांडे मुख्यधारा की पत्रकारिता से जुड़ी हुई नहीं रही है। परंतु, उन्होंने अन्य क्षेत्रों में अपने लेखों द्वारा महत्वपूर्ण योगदान दिया है। देशपांडे वामपंथी विचारधारा व महिला आंदोलन से जुड़ी रही हैं यही कारण है कि उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र वामपंथी पत्रिका (पत्रकारिता) को चुना। देशपांडे ने पत्रकारिता वर्ष 1984 मैं प्रारंभ की थी। वह बताती हैं कि उन्होंने पत्रकारिता की शिक्षा नहीं ली थी। यही कारण था कि उन्हें किसी भी प्रकार की ट्रेनिंग नहीं मिली। वह इस ट्रेनिंग के ना मिलने को एक कारण बताती है कि उन्हें पत्रकारिता से संबंधित कार्य को सीखने में समय लगा और यह सीखने की प्रक्रिया उन्होंने स्वयं अपने लेखन द्वारा सीखा।

वामपंथी पत्रिका संस्थान में उन्हें वह खुला माहौल मिला, जो वास्तव में एक पत्रकार को मिलना चाहिए। मुख्यधारा मीडिया के विपरीत यहां महिलाओं को उनकी जगह दी जाती थी, उनके साथ लैंगिक आधार पर भेदभाव नहीं होता था। बल्कि उन्हें काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था वह बताती हैं कि शायद यही कारण है कि-

> "मैं भ्रम में जीती थी कि पत्रकारिता के क्षेत्र में भेदभाव होता ही नहीं है।"[88]

वामपंथी पत्रिका के संगठन का स्वरूप अत्यधिक स्वतंत्र था। वहां नीति निर्माण की प्रक्रिया के लिए जो संगोष्ठी होती थी सबको उसमें अपने मत रखने का अधिकार था। हालांकि यह भी सच है कि अंत में निर्णय लेने का अधिकार केवल संपादक के पास होता था।परंतु, वामपंथी पत्रिका संगठन का स्वरुप इस प्रकार का था कि उसमें संपादक भी सभी के मतों को ध्यान में रखते हुए ही अंत में निर्णय लेते है। देशपांडे बताती हैं कि इस संगठन में किसी को भी काम करने से रोका नहीं जाता था। यदि कोई किसी विषय पर लिखना चाहता था तो उसके लेखन को नकारा नहीं जाता था। बल्कि उन्हें प्रोत्साहित किया जाता था। हालांकि इस संगठन में भी होमोसेक्सुअलिटी एक ऐसा मुद्दा था जिस पर लिखने में पत्रकार झिझक महसूस करते थे या इसे गलत मानते थे। महिलओं के प्रति स्वतंत्रता की बात करते हुए देशपांडे अपना अनुभव बताती है-

> जब मैं ने आंफिस में पहली बार सिगरेट जलाई तो चौकिदार ने ने मुझसे पूछा कि आप सिगरेट पीती है? तो मैं कुछ कहूं उससे पहले ही हमारे संपादक आए और उन्होंने कहा कि तू कब से

[88] **अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली**

मुझे सिगरेट पीता देख रहा है। इतने साल हो गये तू ने मुझसे तो कभी नहीं पूछा लेकिन इनसे पूछ रहा है क्योंकि यह औरत है?"[89]

इसी तरह पत्रकारिता में लैंगिक भेदभाव के मामले मे कई बातें दबी जुबान से सुनने को मिलती है जैसे कि-महिलाओं के साथ लैंगिक अधार पर भेदभाव होता आया है माधोक उदहारण देकर बताती है कि -

"प्रभा दत्त (बरखा दत्त की माँ) जब पत्रकारिता संस्थान में नौकरी के लिए गयी तो उन्हें कहा गया की आप क्वालिफाइड तो है। परंतु आप एक महिला है इसलिए हम आपको ये नौकरी नहीं दे सकते।"[90]

अंजलि देशपांडे मीडिया के स्वरूप के अंतर्गत विभाग की प्रक्रिया को बताते हुए कहती है कि मीडिया में भेदभाव है| आगे वह पत्रकारिता संसथान में पक्षपाती व्यव्हार के ऊपर बात करते हुए बताती है कि यह भेदभाव की प्रक्रिया हर पत्रकार के अंदर होती है। जैसे की यदि किसी पत्रकार को चार घटनाओं में से किसी एक घटना को चुनना है जिस पर उन्हें अपने लेख लिखना है तो वह उस घटना को चुनेगें जिसमें उन्हें रुचि होगी। यह एक भेदभावपूर्ण प्रक्रिया है। परंतु, यदि यही कोई दलित या मुसलमान पत्रकार करेगा तो उसे पक्षपाती करार कर दिया जाता है जबकि यह पक्षपातपूर्ण(biassnes) संस्थान में व्याप्त है। परंतु, यह आरोप केवल जो

[89] **अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली**

[90] **अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली**

अल्पसंख्यक है उन्हीं पर लगता है। मीडिया के स्वरुप में और उसके व्यवहार में बदलाव आया है अब लोग इसे विश्वसनीय क्षेत्र नहीं मानते हैं। वह हमेशा इसे शक की निगाहों से देखते हैं। इसीलिए जरूरी है कि संस्थान जो पहले विश्वसनीयता थी उसको फिर से प्राप्त करने के लिए कुछ करे।

महिलाओं से संबंधित मुद्दे जो उठाये जाते है इसके दो भाग है पहला महिला पत्रकारों को किस प्रकार की समस्याएं है? दूसरा जो प्रिंट में महिलाओं के लिए जो छप रहा है उसमे महिलाओं से संबंधित मुद्दों को कैसे दिखाया जाता है?

पत्रकारिता में जो महिलाओं की समस्याएं है उसको ज्यादा नहीं उठाया गया है और उनको समस्याएं भी बहुत है जैसे की नाईट शिफ्ट औरतें को नहीं दी जाती थी। इसके कारण पुरुषों ने बोलना प्रारंभ किया लेकिन उसके कारण अलग थे जैसे कि -

> “हम ही रातों में नौकरी क्यों करे? वैसे तो महिलाएं बोलती है वो समान है, सुरक्षा के नाम पर काम से भाग जाती है| यह भी एक कारण है कि महिलाओं को नाईट ड्यूटी पर रखने के लिए बहुत से न्यूज़रूम तैयार हुए| लेंकिन उसमे भी कुछ सावधानियां होनी चाहिए। महिलाएं अकेले न्यूज़रूम में नही रुकेंगी, 2 या 3 महिलाओ का समूह एक साथ रुकेगी, महिलाओ को रात में घर छोड़ने के लिए कैब की सुविधा होनी चाहिए। महिलाओं के बच्चो के लिए क्रेच होने चाहिए ताकि उन्हें काम करने में परेशानी ना हो। सबसे बड़ी समस्या यह है की यूनियन ने भी इसको बहुत गंभीरता से नहीं लिया। INS बिल्डिंग जिसमें बहुत सारे पत्रकारिता के ऑफिस है उसमे एक भी क्रेच नहीं थी। ना ही इस

समस्या को गंभीरता से लिया गया। यूनियन भी इस समस्या के प्रति सक्रिय भूमिका नही निभा पाई।"[91]

महिला पत्रकारों के साथ यौन-उत्पीड़न बड़ी और गंभीर समस्या है। परंतु स्वयं उन महिलाओं द्वारा ही आवाज नहीं उठायी जाती| इस प्रकार के मुद्दों को सार्वजनिक रूप से उठाना बहुत मुश्किल है। जिसके कारण यूनियन भी इसमें इतना काम कर नहीं पाई है। जबकि सोच यही है कि -

"पत्रकार बहुत शक्तिशाली होते है लेकिन यह एक भ्रम मात्र है ऐसा कुछ नहीं होता।"[92]

देशपांडे के अनुसार यौन-उत्पीड़न से सम्बंधित मुद्दे बहुत कम होते थे क्योंकि महिलाएं कम थी और जो थी वह नौकरी जाने व इसे सार्वजनिक रूप से उछाले जाने से डरती थी। वीमेन नेटवर्क ने एक सर्वे किया था कि सुप्रीमकोर्ट का जो आदेश था कि हर संस्थान में एक यौन उत्पीड़न के मामलों के लिए एक कमेटी होनी चाहिए, यह कितनी कारगर है। वह आदेश कितने संस्थानो ने लागू किया है? यह सर्वे देशपांड़े के अनुसार यूनियन को भी करना चाहिए था। वह बताती है कि ना मुझे ऐसा कुछ याद है की यूनियन ने इसके प्रति कोई सकारात्मकता दिखाई हो या कोई अभियान चलाया हो।

महिलाओं के साथ भेदभाव उनकी बीट देने को लेकर भी होता है। पत्रकारिता में हमेशा पुरुष व् स्त्री होने पर निर्धारित करता है कि आपकी बीट क्या होगी। परंतु महिलाओं को खबरों में बहिष्कृत नही कर सकते थे। क्योंकि वर्ष 1980 में महिला आंदोलन अपने चरम पर था, लोग

---

[91] **अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली**

[92] [92] **अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली**

इन प्रश्नों को जानना चाहते थे| इसलिए महिलाओं और उनसे संबंधित प्रश्नों को नजरंदाज करना सम्भव नहीं था|

महिला आंदोलन के संघर्ष व उसमें दलित महिलाओं की बात करते हुए अंजलि देशपांडे बताती है कि महिला आंदोलन महिलाओं को एक वर्ग मान कर चल रहा था। दलित महिलाएं या उनकी समस्याएं अलग है ऐसा कुछ नहीं सोचा जाता था| यह माना जाता था की हर घर में महिलाएं है, उनकी स्थिति ख़राब है मानव अधिकारों व महिला होने के नाते उनके मानवाधिकारों के लिए लड़ना है, सबको एक माना जाता था। दहेज़ व बलात्कार मुख्य प्रश्न थे और इसी कारण ये अख़बारों में भी आने लगे। परंतु उनकी भाषा समस्याप्रद होती थी जैसे कि-

> "एक औरत जा रही थी कुछ लोग आए और मिलकर औरत की इज्ज़त लूट ली।"[93]

इसके खिलाफ महिला आंदोलन ने ये प्रश्न उठाया कि ये कैसी भाषा है? महिला की इज्ज़त लूट ली, अपराध आदमी ने किया। इज्ज़त क्या औरत की योनी से ही जुड़ा प्रश्न है। तब कहा जाने लगा कि इसे बलात्कार कहना पड़ेगा, तब इसे बलात्कार कहा जाने लगा। यूनियन में जो सक्रिय होते थे उनका एक ग्रुप बन जाता था। जो बड़े-बड़े मुद्दे होते थे उनके लिए संगोष्ठी होती थी। इसके लिए सुझाव सब देते थे लेकिन आखरी फैसला एग्जीक्यूटिव प्रेसिडेंट का होता था।

महिला आंदोलन के कारण भी पत्रकारिता में महिलाओ की भागीदारी बढ़ी है। पत्रकारिता को हथियार बनाकर महिला प्रश्नों को उठाया जाने लगा था। हालांकि यह एक आलोचनात्मक विषय है कि उन प्रश्नों कि भाषा अत्यधिक जटिल होती थी। ताकि मुद्दे तो उठे परन्तु पाठक तक वह पूर्ण रूप से पहुंच ना पाए।

---

[93] **अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली**

दलितों की भागीदारी के विषय में देशपांडे बताती हैं कि साठ और सत्तर के दशक में दलितों का जो मध्यम वर्ग था वह कम प्रभावशाली था। उनकी पहुंच बड़े लोगो तक नहीं थी तो इस समुदाय के लोगों की सिफारिश भी नहीं कर सकते थे। दलितों में खुद भी पत्रकारिता करने की सोच नहीं होती थी। वह सरकारी नौकरी करना ज्यादा पसंद करते है हालांकि इसके कारण और भी हैं- जैसे की जो दलित पत्रकारिता में आते है उनके लिए सोच यह है की यदि दलित है तो उनकी अंग्रेजी अच्छी नहीं होगी। इसके अलावा यह भी सोच होती है कि दलित है तो उसकी पहुंच ज्यादा लोगों तक नहीं होगी। पत्रकार को अख़बारों के लिए ख़बर व विज्ञापन लाना अत्यंत ही महत्पूर्ण है, ऐसे में वह विज्ञापन और ख़बर लेन में सक्षम नहीं हो पाएँगे।

देशपांडे बताती है कि जब दलितों के खिलाफ कोई घोर अपराध होता था तो अख़बार वाले केवल करुणा टपका देते थे। परंतु ये होता तभी था जब बहुत बुरा या भयंकर हुआ हो। जब कोई हादसा हो जाता था तब कमियां निकालने के लिय हमेशा दलितों को आगे किया जाता था कि यह व्यक्ति आरक्षण से आया है इसकी वजह से ये हादसा हुआ है। लोगों को अपनी रिपोर्टिंग द्वारा उनके आरक्षण की चर्चा करके उनकी शिक्षा को कठघरे में खड़ा करते थे।

देशपांडे बोलती है कि जरुरी नहीं है दलित आ जायेंगे तो पत्रकारिता में दलितों से संबंधित प्रश्नों को न्याय मिलेगा। क्योंकि आज महिलाएं पत्रकारिता संस्थान में है परंतु इस से महिलाओं से सम्बन्धी नजरिया व सोच पत्रकारिता में अभी भी नही सुधरा है। आज भी सोच पित्रसत्तात्मक है।

आगे देशपांडे बताती है कि यूनियन में दलितों से संबंधित कोई प्रश्न नहीं उठाये गये। यह सच है लेकिन ये भी सच है कि यूनियन के जो सदस्य होते थे। उनके मुद्दे सबसे पहले उठाए जाते थे। ये सही है की यूनियन ने भी कभी नहीं सोचा की दलित मुददे(समस्याएं) नहीं आ रही है और इसका एक कारण दलित प्रतिनिधित्व का पत्रकारिता संस्थान मे न होना भी हो सकता है। दलितों के लिए ख़बर किस प्रकार आ रही है इस पर यूनियन को कुछ करना

चाहिए जो उन्होंने कभी नहीं किया क्योंकि मुद्दा उठा ही नहीं। जैसे की देशपांडे ने अपने अनुभव से बताया की-

> "रिपोर्टिंग के समय सती प्रथा के लिए भारतीय महिलाएं शब्द प्रयोग किया गया। तो कुछ दलित महिलाओं ने कहा की आप पूर्ण महिला समुदाय को एक आधार पर नही देख सकते।सती प्रथा दलितो में नहीं होता था परन्तु इस समस्या का जिक्र करते हुए पत्रकारिता में भारतीय महिला शब्द का प्रयोग होता था तो क्या दलित महिलाएं भारतीय महिला नहीं है।"[94]

पत्रकारिता संस्थान में दलित महिला पत्रकारों के अनुभवों को उनके द्वारा ही गंभीरता से समझा जा सकता है। इसके लिए जया रानी के अपने अनुभवों का जायजा लिया जा सकता है। जया रानी स्वयं को पत्रकारिता में अन्य से अलग महसूस करती है। जया रानी दलित महिला पत्रकार है जिन्होंने अपने 15 वर्ष के पत्रकारिता के अनुभव NETWORK OF WOMEN IN MEDIA IN INDIA (NWMI) सम्मलेन में अपने भाषण द्वारा साझा किया[95]। जया रानी का अनुभव इसलिए भी महत्व्पूर्ण हो जाता है क्योंकि वह पहली ऐसी दलित महिला पत्रकार है जिन्होंने अपने मुख्यधारा की पत्रकारिता के कटु अनुभवों को पहली बार मंच पर साझा किया और पत्रकारों से अनुरोध किया कि वह दलित पत्रकारों को संस्थान में अपनी जगह बनाने में उनका सहयोग करें।

जया रानी पत्रकारिता के आज के दौर को विनाश का दौर बताती है। वह कहती है आज पत्रकारिता अपने विनाश की तरफ अग्रसर हो रहा है। जया रानी अपने पत्रकारिता के अनुभव

---

[94] अंजलि देशपांडे, पत्रकार, यूनियन सदस्य, 16 dec 2016, 12:30P.M दिल्ली

[95] द दलित वौइस् इस सिम्पली नोट हर्ड इन द मेनस्ट्रीम इंडियन मीडिया, जया रानी,15/11/2016, द वायर

द्वारा मीडिया पर आक्षेप करती है और कुछ गंभीर प्रश्न उठाती है जैसे की मीडिया में दलितो से सम्बन्धित घटनाओं को किस प्रकार दिखाया जाता है?

मीडिया संस्थान में दलितों की भूमिका किस प्रकार की है? मीडिया दलितों से संबंधित मुद्दों को उठाते तो है परंतु उनको देखने का नजरिया व उसको पेश करने का तरीका अलग होता है जैसे की दलितों का शोषण या हिंसा का प्रयोग मीडिया को अच्छी TRP देता है जिसके कारण वह इसे exclusive व breaking news बनाकर दिखाते है। जया रानी कहती है कि आज जातिगत भेदभाव इस संस्थान में इस कदर हावी है कि उसको न हम सोच सकते है न ही बता सकते है। जिस प्रकर जाति हमारे समाज को चलाती है मीडिया में भी यही होता है। जाति भी एक प्रकार से पत्रकारिता को चलाती है। जया रानी कुछ आंकडे बताती है 95% मुख्यधारा मीडिया के मालिक सवर्ण है। 70-80% उच्च पदों पर सवर्ण पुरुषो का कब्ज़ा है। 1% भी दलित इस क्षेत्र में नहीं है। जिनको मीडिया के निति निर्माण में शामिल किया जाता हो। अनिल चमडीया ने अपने जन मीडिया के सर्वे द्वारा जो तस्वीर 2006 में पेश की थी जया रानी 2016 में भी उसी प्रकार की तस्वीर पेश कर रही है।

दलित पत्रकारों का क्षेत्रीय भाषीय मीडिया में भागीदारी है परंतु इसमें भी उनको वह स्थान नहीं मिल रहा है जो मिलना चाहिए। उनको इसमें कार्य तो मिल जाता है परंतु उनको वह स्थान नहीं मिल पाता जिसके कई कारण हो सकते है। पहला, अब जो दलित पत्रकारिता के क्षेत्र में आ रहे है वह First Generation Of Gratuate Learner है वह इस रेस में नए है| दलित समुदाएँ के लोग अभी दूसरे लोगों की बराबरी करने का प्रयास कर रहे है। परंतु, समस्या ये है की दलित होने के कारण उनके साथ दोहरा भेदभाव किया जाता है उनकी भाषा के कारण नौकरी तो मिल जाती है परंतु सम्मान और वह स्थान नहीं मिल पाता जिसके वे काबिल होते है।

जया रानी अपने पत्रकारिता के अध्ययन के समय हुए उनके साथ व्यव्हार का भी उल्लेख करती है कि उन्होंने मंजोलिया Tea Estate में दलित मजदूरों से राज्य द्वारा हिंसा के प्रयोग से संबंधित एक लेख विश्वविध्यालय के मैगज़ीन के लिए लिखा था। जिसके कारण उन्हें लगभग सस्पेंशन देखना पड़ा। इससे ज्ञात होता है कि जातिगत मुद्दों पर लिखना ना ही पत्रकारिता संस्थान बर्दाश करते है ना ही जहां पत्रकारिता कि शिक्षा दी जाति है वह करते है।

जया रानी के सपनो पर प्रहार उनके विश्वविधालय में ही हुआ था। उन्हें जब अपने लिखे हुए लेख के लिए सस्पेंशन की चेतावनी मिली तो वह उनके लिए जोर का झटका था। उससे उन्हें यह ज्ञात हुआ की किस प्रकार के लेख हमारा समाज अपनाता है। परंतु, जब वह मुख्यधारा मीडिया में नौकरी खोजने के लिए निकली उनके लिए वह और अधिक चौकाने वाला समय था जो उन्हें इस संस्थान की कुछ सच्चइयो से रूबरू करा रहा था। वह बताती है कि दलित घटनाओ को तब तक मुख्यता नहीं मिलती थी जब तक वह अत्यधिक हिंसा, बलात्कार या सामूहिक हत्या से न जुड़ा हुआ हो। जया रानी बताती है कि-

> “उस समय जो सोच लेकर में आई थी मुझे अघात हुआ की मैं चाहकर भी वह नहीं कर सकती। हर मोड़ पर मेरे द्वारा लायी गयी घटनाओ का खंडन किया जाता था। मेरे सपने को हर मोड़ पर तोडा जा रहा था। मेरे विचारों को मारा जा रहा था। 10 साल के पत्रकारिता के अनुभव में यही पाया कि जाति उसको हर स्तर पर प्रभावित करती है। उनकी सैलरी 18000 रुपये थी। वह डेली शो की स्क्रिप्ट राइटर थी। दिन रात अपनी मेहनत व कार्य से वह प्रयास कर रही थी कि उन्हें वो इज्जत मिले जो उन्हें मिलनी चाहिए। इतनी मेहनत के बाद भी जब पदोन्नति की बात आती थी तो उनका नाम दूर-दूर तक नहीं होता था। वही दूसरी तरफ, जो उनके जूनियर थे जिनका काम भी उनसे कम था उनकी सेलरी 40,000 थी। क्योंकि उनकी जाति ऊची थी। मीडिया जैसे बड़े

> संस्थान में यदि काम करना है तो यहां दो ही तरीके है दलित के काम करने के लिए या तो वह स्वयं को दबा ले या यह संस्थान छोड़ दे क्योंकि मीडिया उनको जैसे वह है वैसे नहीं अपनाएगा और न ही काम करने देगा।"[96]

जया रानी ने विमेंस मैगज़ीन के लिए काम करना प्रारंभ किया। परंतु बहुत जल्द उन्हें उसे छोड़ना पड़ा। उन्होंने पेशकश की गाँव के कुछ महिला सरपंचो के अनुभवों पर उन्हें वह काम करना चाहती है। परंतु, इसे सिरे से खारिज कर दिया गया जिसके बाद उन्होंने पांच महिला सरपंच की लिस्ट बनाई। जिसमें वह पहला महिला साक्षात्कार करने गयी, वह थी मेनका।

मेनका ऊरापक्कम पंचायत, कांचीपुरम राज्य की सरपंच थी। जया रानी बताती है की उनके पास जाने से पहले उन्हें नहीं पता था कि "वह दलित है" उन्होंने उनसे बात की महिला सरपंच होने के नाते उन्हें किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। तब मेनका ने उन्हें बताया कि -

> "महिला सरपंच होने के नाते नहीं एक दलित महिला सरपंच होने के नाते अपने अनुभव बताये। दलित महिला सरपंच होने के नाते उन्हें उनके सम्मान से जो समझौता करना पड़ रहा था उन्हें डराया जा रहा था। दलित होने के कारण उन्हें ऊँची जाति वाले सरपंच की कुर्सी पर नहीं बैठने देते, उन्हें जान से मारने की धमकियां दी जाती है, ऊँची जाति के लोग चाहते थे कि वह अपना पद छोड़ दे जिसके लिए उन्होंने उनके खिलाफ पुलिस में भी शिकायत दर्ज करायी थी। परंतु उनकी शिकायत पर कोई भी कार्यवाही नहीं की गयी।"[97]

---

[96] द दलित वौइस् इस सिम्पली नोट हर्ड इन द मेनस्ट्रीम इंडियन मीडिया, जया रानी,15/11/2016, द वायर

[97] द दलित वौइस् इस सिम्पली नोट हर्ड इन द मेनस्ट्रीम इंडियन मीडिया, जया रानी,15/11/2016, द वायर

पूरा दिन मेनका के साथ बीतने के बाद उनके अनुभव को लेकर वह अपने ऑफिस गई, पूरी रिपोर्ट तैयार की। परंतु, उसे सिरे से नकार दिया गया। एक बार फिर उनकी स्टोरी को समाप्त करने का प्रयास किया गया। उन्हें कहा गया इससे अच्छा है कि वह रेसिपी लिखें। उनका दिल व दिमाग इस जदोजेहद में ही था कि आगे उन्हें क्या करना चाहिए। उसी समय जाते वक़्त जया रानी को एक अख़बार में नजर पड़ी, उनके अन्दर डर समा गया था, कहीं ये वही तो नहीं जो वह सोचना नहीं चाह रही थी। अख़बार में "एक दलित महिला सरपंच की हत्या की ख़बर वह मेनका की हत्या की ख़बर थी।" उसी वक़्त जया रानी ने सोचा की मेनका के आखरी इंटरव्यू को उसकी जगह मिलेगी। फिर उन्होंने अपने ऑफिस में बात की उन्हें फिर मना कर दिया गया। इस बार वह investigative मैगज़ीन के एडिटर के पास गयी, उन्होंने उस इंटरव्यू को उसकी जगह दी क्योंकि वह मेनका का आखरी इंटरव्यू था।

उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी। परंतु, वह यह भी जानती थी कि आर्थिक स्थिति बेहतर रहे इसके लिए उन्हें इस जातिवादी मीडिया के साथ आगे बढ़ना ही था। परंतु वह यह भी चाहती थी कि एक पत्रकार होने के नाते उन लोगो की आवाज बने। जिनकी आवाज को दबाया गया है या जिनको सुनकर भी अनसुना किया गया है जिसके लिए उन्होंने वैकल्पिक(alternative) मीडिया का रूख किया। 'दलित मुरासु' पत्रिका जिसका विचार है कि जातिगत भेदभाव को समाप्त करना होगा उस पत्रिका का जया रानी ने चुना। उनके उस विचार को दलित मुरासु' ने आगे बढ़ाया। जया रानी अपने पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुभव के बारे में कहती है-

> "हर दलित पत्रकार इतना भाग्यशाली नहीं होता जितनी शायद आज मैं हूं। आज भी यदि मेरे लायी हुई घटनाओ को उनका स्थान नहीं मिलता या उन्हें सिरे से नकार दिया जाता है। मैं फिर भी प्रयास करती हूं कि उसको उसका स्थान मिले। अब मैंने सोचना बंद कर दिया है कि लोग क्या सोचेंगे या क्या फर्क पड़ेगा। मैंने अपने आप को बस यही समझती हूँ कि मैं एक

पत्रकार हूं और पत्रकार होने के नाते मेरा काम है कि जिनकी आवाज को दबाया गया है मैं उनकी आवाज बनूं।"[98]

परंतु समस्या यह भी है कि यदि कोई दलित, दलित संबंधित मुद्दों पर कुछ लिखता है या बोलता है तो कहा जाता है की वह अपनी जाति को गौरान्वित करने का प्रयास कर रहा है परंतु जिस व्यक्ति को उसकी जाति की वजह से हमेशा नीचे दबाया जाता है वह कैसे अपनी जाति पर गौरान्वित होगा? जब कोई दलित पत्रकार दलितों से संबंधित ख़बर लाता है या उनसे संबंधित हिंसा की बात करता है वह अपनी जाति को आगे नहीं बढ़ा रहा होता, वह केवल एक प्रयास होता है कि समाज के उस तबके की भी ख़बर लोगों तक पहुंचे जिसे लोगों ने नजरंदाज किया है। जया रानी बताती है कि उनके साथी दलित पत्रकारों पर ऐसे प्रश्न उठते रहे है। बहुत से दलित पत्रकार अपनी पहचान तक छुपाते हैं क्योंकि उनको बिना किसी समस्या के नौकरी करनी होती है। परंतु, मुख्यधारा की मीडिया के लिए यह अत्यधिक शर्म की बात है कि वह अभी तक इन दलित पत्रकारों को सुरक्षा और खुला माहौल नहीं दे पाए है। जहाँ वह स्वयं को सामने रखकर अपने विचारों को लोगों तक पंहुचा सके। इतना सब होने के बाद भी उनकी अवाज को उनके चुप्पी में बदल दिया जाता है, ऐसे में एक दलित पत्रकार किस प्रकार बात करेगा?

एक पत्रकार होने के नाते जिम्मेदारियां होती हैं कि वह अन्य दलित पत्रकार को किस प्रकार उसके डर से मुक्ति दिलाएं। जया रानी के अनुसार पत्रकार होने की पहली योग्यता उसका casteless होना होती है। यदि एक पत्रकार समानता के सिद्धांत को लेकर चलता है तो ये संभव है की हर स्तर पर समानता होगी और वह समाज को एक समानता पर आधारित नजरिया प्रदान करेगा। जरुरी है कि इसके लिए भी नीति बनायी जाये कि किस प्रकार दलितों का प्रतिनिधित्व न्यूज़रूम में बढाया जाये व उनसे संबंधित मुद्दों को पारदर्शिता से देखा जाये।

[98] द दलित वौइस् इस सिम्पली नोट हर्ड इन द मेनस्ट्रीम इंडियन मीडिया, जया रानी,15/11/2016, द वायर

एक दलित पत्रकार को कई प्रकार की चुनोतियो का सामना करना पड़ता है। जो दलित आ रहे है वह फर्स्ट जनरेशन ऑफ़ लर्नर है, दूसरी निम्न जाति की वजह जो बरसो का भोझ लेकर जीते है उस से स्वयं को निकालना कठिन है, अंग्रेजी भाषा, वर्ग विभेद कपडे पहनने का तरीका, पर्सनेलिटी, और विभिन्न चीजे जिनके कारण पहला वह स्वंम से लड़ते है और लड़ते हुए सीखते हैं। उसके बाद उनको समाज से लड़ना होता है फिर भी कार्यस्थल पर उनको केवल अपमानित ही किया जाता है।

इसी कारण जो पत्रकार दलित नहीं है उनकी जिम्मेदारी बनती है की वह किसी भी प्रकार का विभेद न करे व समानता के सिद्धांत पर आधारित होकर कार्य करें। यदि दलितों के खिलाफ जो हिंसा हो रही है या शोषण हो रहा है उसे समझने का प्रयास मात्र करना चाहते है तो जरुरी है की सवर्ण पत्रकार ऊँची जाति का चश्मा उतारे व नग्न आँखों से और दलित पत्रकारों की नजरो से देखे व समझे तब शायद दलितों से संबंधित मुद्दों को सही प्रकार से देख पाएँगे। जया रानी अंत में अपील करती है-

> "मेरी आपसे आखरी अपील है की यदि आप पत्रकार है तो जातिगत भेदभाव से हटकर सोचे व कार्य करे। जो लोग आज जातिगत भेदभाव पर भरोसा करते है जिस दिन उतने ही लोग जातिप्रथा को समप्त करने के लिए सोचना प्रारम्भ करेंगे उससे संबंधित कार्य करेंगे तो हमारा समाज बहुत ही सुन्दर व अच्छा समाज होगा। मैं इस चमत्कार की आशा करती हूं कि किसी दिन यह चमत्कार जरुर होगा, मुझे उस दिन का इंतजार रहेगा।"[99]

सरिता महीन केरल से है और तेजस डेली मलयालम भाषी अखबार में दलित महिला पत्रकार के रूप में कार्य करती है। पत्रकारिता के अनुभवों को साझा करते हुए कई सवाल खड़ा करती है, कि-

[99] द दलित वौइस इस सिम्पली नोट हर्ड इन द मेनस्ट्रीम इंडियन मीडिया, जया रानी,15/11/2016, द वायर

> "मेरी माँ मेरे लिए पत्रकारिता की नौकरी के लिए दैनिक अख़बारों के कुछ मीडिया कर्मियों से मदद मांगने गयी। मीडिया कर्मियों ने उनसे कहा कि मीडिया एक ग्लैमर की दुनिया है। फिर पूछा उसको अंग्रेजी आती है? फर्राटेदार अंग्रेजी बोल लेती है? उनके इन प्रश्नों से मेरी माँ को एहसास हुआ की उनकी और मेरी स्थिति समान है। वह भले ही घर में काम करती है और मुझे बाहर नौकरी करनी है।"[100]

जिस तरह परिवार के दायरे में महिलाओं को कोई अधिकार नहीं होता और हर गलतियों के लिए जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। उसी प्रकार घर के बाहर भी महिलाओं के कमियों को निकाल कर उसपर ही सारी गलतियों के लिए कसूरवार ठहरा दिया जाता है। कभी भी यह ध्यान नहीं दिया गया कि यदि दलितों को अंग्रेजी अच्छी नहीं होती है तो उसके प्रति व्यवस्था को ध्यान देना चाहिए। मेरे दलित होने को मेरी कमी बनाने का जरिया बनाया गया। संसथान व् व्यवस्था अपनी कमियां छुपाने के लिए निम्न समुदायों को जिम्मेदार बता दिया जाता है। इसलिए मेरी माँ को एहसास हुआ कि घर में काम करने वाली महिला और बहार जाने वाली महिला एक ही प्रकार की व्यवस्था से लड़ रही है।[101]

दलित महिलाओ की समस्या समाप्त नही होती प्रश्न उनकी अस्मिता से भी जुड़ता है। "IDENTITY" एक ऐसा विषय है। जो कि भारतीय राजनीती में शिक्षा ले रहे या अधिकतर हुमेनिटी छात्रों के लिए महत्व्पूर्ण विषय है यह प्रारंभ से ही पढ़ाया जाता है। परिभाषाएं रटाई जाती हैं परंतु वास्तव में स्थिति इस से अलग है। रोज असंख्यक दलित खुद से एक लड़ाई लड़ रहे होते है। वह लड़ाई होती है उनकी पहचान को छुपाने की वह रोज सुबह कुछ और बन

[100] रुपेश कुमार, कास्ट इन गॉडस ओन कंट्री:दलित वीमेन जर्नलिस्ट एंड फैमिली अटेकड",राउंड टेबल इंडिया, 21/july/2017. 4:40 PM

[101]रुपेश कुमार, कास्ट इन गॉडस ओन कंट्री:दलित वीमेन जर्नलिस्ट एंड फैमिली अटेकड",राउंड टेबल इंडिया, 21/july/2017. 4:40 PM

कर निकलते है क्योंकि उनको पता है की यदि उनकी पहचान उजागर हुई तो उनको धुत्कार दिया जायेगा| हमारे देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के चौथे स्तम्भ में दलित पत्रकार तो है परंतु वह अपनी पहचान छुपाकर काम करते है क्योंकि उन्हें पता है की उन्हें अपनाया नहीं जाएगा।

छवि जो की काल्पनिक नाम है वास्तव में यह अभी भी पत्रकार के रूप में गाजिआबाद(काल्पनिक) में काम कर रही है जब मैंने इनसे बात करने की कोशिश की तो इन्होने साफ़ मना कर दिया की वह दलित महिला पत्रकार के रूप में साक्षात्कार नहीं देंगी। वह नहीं चाहती की उनकी नौकरी जाये क्योंकि उन्होंने किसी को नहीं बता रखा है की वह दलित है। एक साल तक बात करने के बाद उन्होंने फ़ोन पर ही बात की व बताया की किस प्रकार से पत्रकारिता की सरंचना व् हर स्तर पर जातिगत भेदभाव व्याप्त है उपरी पदों पर सवर्ण है जिसमे अधिकतर ब्राह्मण है व् वह उन्ही के लोगो को (ब्राह्मण) इस पत्रकारिता के लिए योग्य मानते है। आगे वह बताती है की उनकी पहचान ना पता चल जाये इस डर से उन्होंने कई जगह से नौकरी छोड़ी है क्योंकि उन्हें पत्रकारिता से प्यार है इसलिए उन्हें अपनी पहचान के साथ समझौता करना पड़ता है। इन कुछ बातो के साथ ही उन्होंने ज्यादा बात करने से मना कर दिया व शर्त रखी की उनकी पहचान को मेरे द्वारा उजागर नहीं किया जाएगा। परंतु छवि को जब मैंने अपने शोध का विषय बताया तबसे उन्होंने कभी मुझ से बात करने से मना नही किया वह चाहती थी की दलित महिला पत्रकारों पर काम हो और उनकी स्थितियो के बारे में लोगो को पता चले।[102]

दोनों ही महिलाएं दलित पत्रकार है परंतु जहा एक(जया रानी) अपनी पहचान को लेकर खुलकर बोलती है वही छवि चुप है दोनों के अपने कारण है क्योंकि साउथ में दलित पत्रकार कुछ प्रतिशत में है परंतु उत्तर भारत या दिल्ली के आसपास नहीं है। यहां उनका अपनी

[102] छवि(काल्पनिक नाम) दलित महिला पत्रकार 9 जून 2017, 9AM

पहचान के साथ काम करना ज्यादा मुश्किल है। दोनों का शोषण सामान कहानी बयाँ करता है।

साहित्य भी प्रिंट मीडिया का महत्व्पूर्ण हिस्सा है इसलिए जरुरी है की हम यह देखे की साहित्य के क्षेत्र से दलित महिलाओ की आवाज किस प्रकार की आ रही है और उनके लेखन को हमारा समाज किस प्रकार से देख रहा है। इसलिए तीसरा साक्षात्कार मैंने अनीता भारती का किया है। अनीता भारती दलित साहित्य लेखिका है जो स्वयं अस्मिता से दलित है। साक्षात्कार के दौरान उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में दलित पुरुषों के द्वारा की जाने वाली मनुवादी राजनीति की आलोचना कि, उनका कहना था कि दलित पुरुष पूर्ण दलित समाज के लिए समानता की मांग नहीं करता केवल अपने लिए करता है| यही कारण है कि विभिन्न दलित महिलाओं को स्वयं अपने समुदाय के पुरुषों के खिलाफ लड़ाई लड़नी पड़ती है क्योंकि दलित पुरुष चाहते ही नहीं है कि दलित समुदाय की महिलाओं को उनकी जगह मिले| दलित पुरुष उन्हें व उनके लेखन को बांधकर रखना चाहते हैं।

दूसरा अनीता भारती मानती है कि दलित महिलाएं अन्य महिलाओं से ज्यादा मुखर होती हैं क्योंकि उनका स्वतंत्रता प्राप्त करने का संघर्ष अन्य महिलाओं से ज्यादा है और यदि दलित महिलाओं को समानता के पायदान पर आना है तो उनके लिए जरूरी है कि वह अपनी इस मूल प्रवृत्ति को बनाए रखें। समाज के अनुसार चलने की जरूरत नहीं है इसे केवल उन्हें अत्यंत पिछड़ापन ही मिलेगा और कुछ नहीं।[103]

यदि दलित साहित्य लेखन में महिलाओं द्वारा लेख लिखे गए हैं उनकी बात करें तो एक समानता दिखती है कि वह अधिकतर लेखन महाराष्ट्र की महिलाओं द्वारा ही हुए हैं जैसे की बेबी काम्बले द्वारा “the prison we broke”[104] उर्मिला पवार द्वारा “आयदान”[105] दोनों ही

[103] अनीता भारती 14 नवंबर 2016, 4:25 दिल्ली

[104] बेबी काम्बले,"द प्रिसेंस वी ब्रोक." *अनु..माया पंडित.हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैक स्वेन*(2009)

[105] उर्मिला पवार, "आयदन." (2003).

दलित महिलाएं अपनी आत्मकथा द्वारा अपना व अपने समुदाएँ के साथ होने वाली बहिष्करण की कहानी बयां करती है|

महाराष्ट्र में दलित आंदोलन पर डा.अंबेडकर का गहरा प्रभाव था क्योंकि वह प्रारंभ ही महाराष्ट्र से हुआ था। और डा.अंबेडकर ने महिलाओं की शिक्षा, स्वतंत्रता और समानता पर खासा जोर दिया था जिसके कारण महिलाएं आंदोलन की तरफ ज़्यादा अग्रसर थी क्योंकि उन्हें स्वयं के लिए स्वतंत्रता वह समानता चाहिए थी| दलित महिलाओं को पता था कि उन्हें शिक्षा द्वारा ही अधिकार प्राप्त हो सकते है जैसा कि डा.अंबेडकर ने कहा था। इसी कारण इन महिलाओं के लेखन क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। परंतु यह आंदोलन जितना सफल महिलाओं के लिए महाराष्ट्र में था अन्य राज्य में इस प्रकार से सफलता प्राप्त नहीं कर पाया। यही कारण है कि हमें महाराष्ट्र से दलित महिलाओं के लेखन तो देखने को मिलते हैं परंतु अन्य राज्यों में इसकी सहभागिता कम है।

एक तरफ जहा अनीता भारती दलित महिलाओ की समस्याओं का जिक्र करते हुए दलित पुरूष की मनुवादी सोच का भी उल्लेख करती है वही दूसरी तरफ प्रोफ.विवेक कुमार पत्रकारिता के क्षेत्र में मनुवादी सोच का उल्लेख करते है जिस प्रकार अनीता भारती के ज्ञान को महिला होने के कारण मनुवादी सोच के पुरुषो ने नकारा उसी प्रकार विवेक कुमार के समाजशास्त्री होने को नकारा गया।

विवेक कुमार जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र पढ़ाते हैं अस्मिता से वह दलित हैं। “मीडिया मंथन” के कार्यक्रम में वह मीडिया पर एक प्रश्न उठाते हैं वह अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं की विभिन्न टीवी चैनलों न्यूज़ चैनलों में एक दलित चिंतक के रूप में उन्हें बुलाया तो जाता है परंतु पूरे 45 मिनट के कार्यक्रम में उनको बोलने का मौका नहीं दिया जाता| उनसे एक भी सवाल नहीं किया जाता उनके सुझाव नहीं मांगे जाते| प्रश्न यह उठता है कि विवेक कुमार समाजशास्त्र पढ़ाते हैं परंतु दलितों से संबंधित कार्यक्रमों

में एक दलित को दलित चिंतक के रुप में बुलाया तो जाता है परंतु उसे बोलने नहीं दिया जाता ऐसा क्यों?

क्या वह दलित पहचान वाले व्यक्ति को केवल जगह भरने के लिए बुलाना चाहते हैं या मीडिया का यह मान लेना कि दलितों में योग्यता और ज्ञान नहीं होता। वह अपनी इस मानसिकता को पूरा कर रहे होते हैं| क्योंकि विवेक कुमार समाजशास्त्री है| उनको समाजशास्त्र संबंधी प्रश्न इस मीडिया में कभी नहीं पूछे जाते क्योंकि वह उन्हें इसके काबिल भी नहीं मानते और ना ही ये मान सकते हैं कि उन्हें इसका ज्ञान होगा भले ही वह समाजशास्त्र के प्रोफेसर है| वह उन्हें बुलाना तो चाहते हैं परंतु केवल एक आकर्षक की वस्तु के रूप में वह जगह भरने के लिए उनके विचार जानने के लिए नहीं।[106]

विवेक कुमार के प्रश्नों को आगे बढ़ाते हुए अनिल चमडिया पत्रकारिता संसथान की कमियों की बात करते है और अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते है|अनिल चमडीया स्वतंत्र पत्रकार है परंतु इससे पहले उन्होंने कई अख़बारों के लिए काम किया है| परंतु प्रिंट मीडिया में लेखन के प्रति जातिगत भेदभाव के कारण उन्होंने कई जगह से नौकरी छोड़ी है हालाकि वह स्वयं दलित नहीं है| परंतु दलित मुद्दों के प्रति काफी सक्रिय रहे हैं। अब वह स्वयं की जन मीडिया नामक पत्रिका निकलते है जिसमे दलित मुद्दों को खासा महत्व दिया जाता है।

चमडिया बताते है कि दिल्ली में दलित भागीदारी लगभग नहीं है। जो सरकारी सिस्टम है उसमें भी दलितों की भागीदारी नहीं है। दलित महिलाओं की भूमिका को देखे तो Indian Institute Of Mass Communication(IIMC) संस्थान मे आरक्षण है जिसके कारण कई दलित लडकियां वहां पहुच तो पाती है परंतु उन निम्न वर्गों की लड़कियो को निजी पत्रकारिता संस्थान में नौकरी नहीं मिल पाती है। सरकारी पत्रकारिता क्षेत्र में थोड़ी बहुत दलित महिलाओं क प्रतिनधित्व हो सकता है। जो लडकिया(IIMC) में दलित है वह भी जाति से दलित है परंतु

[106] Available at: https://www.youtube.com/watch?v=ourTiGtFUVg&t=616s, accessed on 20th June 2017.

उनका वर्ग(class) उच्च वर्ग है। उनके पिता आदि या तो सरकारी नौकरी में होते है या अधिकारी होते है परंतु फिर भी वह इन संस्थानों में आगे नौकरीयों में नही है|

मीडिया संस्थान अपना ढांचा उस प्रकार नहीं बनाती की उन्हे समाज का हर भाग को साथ में रखना है। वह लोकतांत्रिकरण पर आधारित नहीं है। सामाजिक कल्याण के लिए कार्य नहीं करते बल्कि अब कार्य लाभ कमाने के लिए होने लगा है।

मीडिया का रोल कैसा होता है या वह स्वयं को कैसे दिखाता है इसका जवाब देते हुए चमडिया कहते है कि मीडिया का रोल अच्छा नहीं रहा है मीडिया ने जातिगत खबरों के प्रति लोगो के बीच में हमेशा से परेशानियो को बढाया है और यदि हम यह देखे कि मीडिया ने दलितों की स्थिति को कैसे दिखाया है तो ज्ञात होगा की मीडिया ने दलित मुद्दों को अच्छे से ना ही कभी दिखाया है और ना ही कभी इसके साथ न्याय किया है।

जो दलित महिलाएं पत्रकारिता के क्षेत्र में है वह अपनी अस्मिता(identity) के साथ नहीं है वह अपनी पहचान छुपकर कार्य करती है। यदि किसी को पता चल जाए की वह दलित है तो लोगो का उसको व उसके काम को देखने का नजरिया बदल जाता है। चमड़िया उदहारण देकर बताते है कि-

“एक एडिटर बता रहे थे जो की सहरा के सामूहिक संपादक थे की यदि आज की तारीख में वह कोई भी बात बोले तो उसे इस नजरिए से देखा जाता है की मुस्लमान बोल रहा है न की इस नजरिये से की एक एडिटर बोल रहा है”।

चमडिया बताते है कि दलित लड़की अपनी जिंदगी में कितनी भी सफल हो जाये परंतु उसको व उसकी संस्कृति को कभी भी समाज से स्वीकृति नहीं मिलती है। उसे अपनाया ही नहीं जाता जैसे दैनिक जागरण की एक ख़बर में एक युवा पत्रकार द्वारा मायावती को चमारिन

लिख दिया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पत्रकार व पत्रकारिता मायावती को एक सफल नेता के रूप में कभी अपना ही नही पाई।[107]

पत्रकारिता के क्षेत्र में दलित पुरुषो की स्थिति भी ख़राब है परंतु जो दलित महिलाएं होती है वह दोहरी मात खाती है| दलित महिलाएं पत्रकारिता के क्षेत्र में कई प्रकार का भेदभाव देखती है व उस से गुजरती है। उन्हें महिलाओं के समुह का हिस्सा मान लिया जाता है व जो सवर्ण महलाओ की समस्याएँ है वही समस्याएँ इन दलित महिलाओं की होगी ऐसा मान लिया जाता है जबकि ये गलत है। क्योंकि दलित महिलाये जो एक खास वर्ग से नहीं आ रही है उनकी समस्याएं अलग होती है चाहे वह आर्थिक स्तर पर हो या सांस्कृतिक स्तर पर हो। वह अन्य महिलाओं से अलग है उनकी समस्याएं अलग है। यह तो एक दलित महिला पत्रकार का अनुभव था परंतु दलित पुरुष पत्रकार भी इस संस्थान में इस भेदभाव से अछूते नहीं है|

[107]अनिल चमडिया, जन मीडिया संपादक 26/nov/2016, 7:00 p.m

अध्याय - 4

उपसंहार : निरंतर संघर्ष

प्रस्तुत शोध का विषय **"मुख्यधारा प्रिंट मीडिया में दलित महिलाओं की पहचान व प्रस्तुति"** है। साक्षात्कार, तथ्यों और प्राप्त आंकड़ो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पत्रकारिता संस्थानों में दलित महिलाओ और पुरुषो को मीडिया संस्थान में नौकरी पर रखने के लिए योग्यता की दुहाई देता है। लेकिन पिछले दो दशक के आंकडे जो देश के बेहतर पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों से प्राप्त किये गये, जिसके अधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में भी मीडिया संस्थान अपनी वर्ण-व्यवस्था के मूल्यों से उभर नहीं पाया है। इस आंकडे मे यह स्पष्ट दिखता है कि कैंपस चयन के दोरान इस बात का ख़ास ख़याल रखा जाता है कि छात्र किस जाति या वर्ण से आते है। क्योंकि दो दशक के आंकड़ों में यह देखा गया कि दलित समाज से आने वाले छात्र का चयन मीडिया संस्यान में नहीं हो पा रहा है| यह बात सर्वविधित है कि इस संस्थान में आने वाले सभी छात्र एक ही प्रवेश परीक्षा में चयनित होकर आते है लेकिन प्रक्षिशण के बाद वह नौकरीयों मे स्थान नहीं ले पाते है जो उनके सहपाठीयों को मिलता है| वही दूसरी तरफ़ यह देखा गया है कि दलित

समाज से आने वाले प्रक्षिशित पत्रकार वैकल्पिक जगहों पर रहकर अपने समाज के बारे में बेहतर प्रस्तुति कर रहे है। इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि मीडिया संस्थान की सोच में कोई बदलाव नहीं किया। आजादी के पूर्व डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने अपने समय मे मूकनायक नामक अख़बार का संपादन किया। वह इस बात को बेहतर समझते थे कि अख़बार किसी भी समाज के लिए सिर्फ सूचना का स्रोत ही नहीं बल्कि सामाजिक चेतना का भी काम करता है।

आनंद तेलतुमंड़े अपनी पुस्तक में बताते है कि अंबेडकर ने मूकनायक और बहिष्कृत भारत के दिनों से ही, महिलाओ के समर्थन में सामने आते है। क्योंकि अंबेडकर के अनुसार महिलाएं समाज के सबसे निचले पायेदान पर आती है। उनका मानना था कि महिलाएं और निम्न वर्ग के लोगों को यदि समानता व न्याय मिल सकता है तो पत्रकारिता उसके लिए सबसे ज्यादा महत्व्पूर्ण है। इसलिए जरुरी है कि लोकतंत्र का चौथा खम्भा इस आधी आबादी और उन वंचित समुदायों उनसे सम्बंधित प्रश्नों को सही प्रकार से प्रस्तुत करें| परंतु, विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि मीडिया संस्थान इसमें असमर्थ रहा है। दूसरे शब्दों में मीडिया में अभी तक लोकतांत्रिक चेतना का विकास नहीं हो सका है। इसलिए मैंने अपने शोध में मुख्य अखबारों में दलित महिलाओं की सहभागिता व उनसे संबंधित खबर को किस स्वरुप में प्रस्तुत किया जाता रहा है इसका विश्लेषण करने का प्रयास किया है। वही दलित समुदाय से आने वाले महिलाएं और पुरुषों को पत्रकारिता संस्थान अपना ही नहीं पा रहा है।

संविधान में समानता का उल्लेख किया गया है, लेकिन वर्तमान स्थिति इसके विपरीत है, जहां एक और शोषित समाज के लोगों को एक विशेष स्थान देने की बात कही जाती है। वहीं हमारा चौथा खम्बा इन सभी चीजो को अनदेखी करते हुए अमानवीय मान्यता को अपने संसथान में बरक़रार रखा है। इसके पीछे पत्रकारिता संस्थान के

अपनी रुढ़िवादी कारण है। महिलाओं और उनसे संबंधित समस्याओं को हमेशा से एक ही माना गया है जबकि महिलाओं का समूह Homogenous ना होकर विभक्त है| महिलाओ में भी विभिन्न जाति, धर्म, और वर्ग की महिलाएं आती है व इनकी समस्याएं एक दुसरे से अलग हैं। परंतु उन्हें एक पूर्ण वर्ग मान लिया गया है और उसी के अनुसार बात होती रही है। परंतु यह गलत है आप जहां महिलाएं पत्रकारिता में अपनी सुविधाओं का भागीदारी के लिए लड़ रहे हैं। वही दलित महिलाएं अपने पहचान के साथ साथ भागीदारी, अस्मिता और सुविधाओं के लिए लड़ रही है। दलित महिलाएं दो प्रकार से पत्रकारिता के क्षेत्र में संघर्ष कर रही हैं पहला खबरों में जगह बनाने के लिए। दूसरा पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए। परंतु इसके अंतर्गत दलित महिला पत्रकारों को बहुत ही समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे कि दलित महिला पत्रकार रोज अपनी पहचान छुपाकर कार्य करने के कारण स्वयं से एक संघर्ष कर रही होती है। दूसरा यदि कोई दलित महिला पत्रकार अपनी पहचान के साथ काम करती है। जैसे जया रानी काम कर रही थी तो उन्हें पूरे पत्रकारिता संस्थान से लड़ना पड़ता है|

जो महिला अपनी दलित अस्मिता के साथ पत्रकारिता संस्थान में कार्य करती हैं उन्हें दलित महिला होने के कारण पूर्व प्रधान सोच से व उच्च वर्ग जाति के महिलाओं से भी एक प्रकार का संघर्ष करना पड़ता है। मेरा यह शोध लेने का कारण था कि मैं दलित महिलाओं पर कार्य करना चाहती थी। लोकतंत्र का चौथा खंबा कहे जाने वाले पत्रकारिता के इस संस्थान में दलित समुदायों की स्थिति बहुत दयनीय है। वही दलित महिला पत्रकार का प्रतिनिधित्व ना के बराबर है। साक्षात्कार के दौरान पत्रकारों से बात करने से पहले जब भी मैंने कहा कि दलित महिला पत्रकार का साक्षात्कार करना चाहती हूं। वह एक लाइन सब के द्वारा कही गई कि **"दलित महिलाएं**

पत्रकारिता में तो है ही नहीं कैसे करोगी" यह मेरे शोध का सबसे अचंभित करने वाला अनुभव था। जब मैं अपना पेपर पढ़ने "दलित महिला पत्रकारों की पहचान और प्रस्तुति" के लिए मध्यप्रदेश गौर सिंह विश्वविद्यालय के मास कम्युनिकेशन सेंटर में पत्र वाचन करने गई। वहां के पूर्व विभागाध्यक्ष ने सेमिनार में दलित की परिभाषा बताई कि- दलित वह है जो किसी भी क्षेत्र में सफल ना हो। इस माध्यम से वह यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे है कि दलितों में योग्यता की कमी है। इसलिए वह इस क्षेत्र में कम है और इसके बाद मुझसे पूछा गया कि आपका पूरा नाम क्या है? "क्या आप दलित हैं" दलितों पर काम करने वाला व्यक्ति दलित ही होगा इस मानसिकता के साथ काम करने वाले हमारे आने वाली पीढ़ी के पत्रकारों का निर्माण कर रहे हैं| मेरी सोच के अनुसार मुझे साक्षात्कार के लिए दलित महिला पत्रकार नहीं मिली और जो मिली उन्होंने बात करने से मना कर दिया क्योंकि वह अपने अस्मिता को छुपाना चाहती थी।

यह स्पष्ट दिखता है कि मुख्यधारा कि मीडिया में दलितों कि अभिव्यक्ति पर चुप्पी है। जरूरत इस बात कि है अपनी अभिव्यक्ति के लोकतांत्रिक स्पेस का निमार्ण करें या मुख्यधारा मीडिया दलितों की समस्या के लिए संवेदनशील बनाये जाए। मौजूदा समय में भारतीय राजनीति अपनी जरूरतों के हिसाब से दलित प्रश्नों को राजनीतिक रूप से बहस का विषय बनाती है। परंतु, दलित समुदाय के उन सवालों को हाशिये पर ढ़केल देती है जिससे उनका वास्तविक हित जुड़ा हुआ है। शमेरा शोध यहां समाप्त नहीं होता बल्कि प्रारंभ होता है क्योंकि मैं दलित महिलाओं के ना होने, व होकर भी अस्मिता को छुपाने की प्रक्रिया को समझना चाहती हूं। जिसके लिए सीमित पत्रकारिता के क्षेत्र से निकलकर विभिन्न राज्यों के संस्थान में दलित महिला पत्रकारों की खोज करनी होगी। दूसरा जो दलित महिला पत्रकारिता में अपनी आवाज नहीं ला

पा रही हैं वह वैकल्पिक मीडिया की तरफ रुख करती हैं जैसे जया रानी। मैं इस वैकल्पिक मीडिया की तरफ अपने काम के द्वारा अग्रसर होना चाहती हूं कि वह इन आवाजों के साथ कितना न्याय कर पाती हैं। दूसरा दलित महिला पत्रकार का ना होना भी अपने आप में एक शोध का विषय है इसीलिए मैं इसे अपने शोध का अंत ना मानकर प्रारंभ मानती हूं|

संदर्भ ग्रंथ-सूची

प्राथमिक स्त्रोत(Primary Sources)

अभिलेखागारीय स्त्रोत

मातंग (समाचार पत्र)14 जून 1941 माईक्रोफिल्मस ;NMML

(Microfilms); NMML

रिपोर्टर्स

National comission for women report, 2004, pub by Press Institute of India.New delhi.

http://www.ifj.org/uploads/media/INDIA.pdf

राष्ट्रीय मीडिया का सर्वे, चौत्था पन्ना,मीडिया स्टडीज ग्रुप(णी दिल्लीरोहि), 2006

प्रथम प्रेस आयोग रिपोर्ट, पार्ट-1,(1954),नई दिल्ली

Report of the second Press Commission, Vol-1 1985. New Delhi

Status of Women in India: A synopsis of the Report of the National Committee on the status of women 1971-1974. I.C.S.S.R, New Delhi, 1975

Women in India – A Country Paper, New Delhi, Ministry for Women & Child Welfare, Govt. of India, 1973

Mass Media in India, Publications Division, Government of India, New Delhi, 1988

Print Media and Communalism – A Document prepared by charu and Mukul, New Delhi, 1990

Files of Media Report on Women Betwen 1983-89

UNESCO Report No.84, Mass Media: The Image, Role and Social Conditions of Women, Paris, 1979

UNESCO Report titled, women and Decision Making: The Invisible Barriers, Paris 1987, Indian Edn, New Delhi: sterling Publishers, 1989

बुकलेट\पत्रिकाएं

Farooqui, Vimal "Women : Victims of an Exploitative Economic system and Unjust Social Order".National Federation of Indian Women Publication. New Delhi. 1983

Singh, Nalini "Indian Women and the Media." Ministry of Social and Women's" Welfare and UNICEF.New Delhi. 1985

राजकिशोर,आज के प्रश्न(सं.) "स्त्री की लिए जगह"वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

राजकिशोर,आज के प्रश्न(सं) "हिंसा की सभ्यता"वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

राजकिशोर,आज के प्रश्न(सं) "स्त्री,परंपरा और आधुनिकता" वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

उपाध्याय,रमेश (सं.) "सामाजिक न्याय की अवधारणा" शब्दसंधान, नई दिल्ली, 2014

उपाध्याय,रमेश (सं.) "आज का स्त्री आंदोलन" शब्दसंधान, नई दिल्ली, 2011

उपाध्याय,रमेश (सं.) "स्त्री सशक्तिकरण की राजनीति" शब्दसंधान, नई दिल्ली, 2012

चतुरसेन,आचार्य(सं.) "चांद का फांसी अंक" इलाहाबाद, प्रथम प्रकाशय 1928, संस्करण 2000

तिवारी,नंद तिवारी(सं.) "चांद का अछूत अंक" इलाहाबाद, प्रथम प्रकाशय 1927, संरकरण 2014

पांण्डेय,कमला दत्त(सं.) "हिंदू पंच का बलिदान अंक" नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2011

दुबे,अभय कुमार(सं.), "प्रतिमान" प्रवेशांक जनवरी-जून, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

दुबे,अभय कुमार(सं.), "प्रतिमान" वर्ष-1,अंक-2, जुलाई-दिसंबर, वाणी प्रकाशन, 2013

दुबे,अभय कुमार(सं.), "प्रतिमान" वर्ष-2, अंक-1, जनवरी-जून, वाणी प्रकाशन, 2014

दुबे,अभय कुमार(सं.), "प्रतिमान" वर्ष-2, अंक-2, जुलाई-दिसंबर, वाणी प्रकाशन, 2014

चमडिया,अनिल(सं.), जन मीडिया, अंक-39, जून 2015,

बटरोही ,हिंदी पत्रकारिता की पृष्ठभूमि -आलोचना अंक 15 अक्टूबर-दिसंबर ,1970

बेवसाईट

http://www.ifj.org/uploads/media/INDIA.pdf

http://www.fao.org/docrep/013/am307e/am307e00.pdf तारीक 22/07/2017

https://www.dasra.org/social-organization/women-media-and-news-trust

https://sabrangindia.in/article/if-laxman-plays-hanuman

https://www.youtube.com/watch?v=-k2mCPCPEj0&t=29s तारिख -22/7/2017

http://www.hindustantimes.com/india-news/massive-dalit-gathering-in-una-marks-end-of-10-day-protest-rally/story-9WEcJGIdMze9m4zigrtf9K.html तारिख-10/7/2016

: https://www.youtube.com/watch?v=ourTiGtFUVg&t=616s, accessed on 20th June 2017.

ध्रुबो ज्योति,कवरिंग अटरोसिटीस इन ए सवरना न्यूज़रूम ,10 अगस्त 2016 राउंड टेबल इंडिया

लेख

Talwar, Veer Bharat, Feminist Consiousness in Women's journal in Hindi, 1920, in sangria, Kumkum & Vaid Sudesh (Ed.) Eecasting Women, Kali for women, Delhi, 1953

Mani,Lata-Contention Tradition-The Debate on Sati in Colonial India, in sangria, Kumkum & Vaid Sudesh (Ed.) Eecasting Women, Kali for women, Delhi, 1953

Gupta, Jyoti, "Women Second in Land Agenda" *EPW* May.2002. pp 1746-1754

Krishanan, P.Radha, "Religion Under Globalisation" *EPW* March 27, 2004pp.1403-1412

Agnes,Flavia, "Women's Movement within A Secular Framework Redefining the Agenda" *EPW* vol 29, No19, May 19,1994 pp 1123-28

Phadka, Shipla, "Thirty Year on women's studies Reflects on the women's Movement" *EPW* Oct 25,2003 pp 1103-12

Raj, Maithreyi Krishna, "Women's work in census Beginning of Change" *EPW* vol 24 Oct 8, 1990 pp2663-65

Kishwar, Madhu, "Gandhi and Women" *EPW* Vol.20, No 40 pp 1691

Chakravati, Uma, "Brahmanical Patriarchy in Early India" *EPW* April 13, 1993, pp 579-585

E.Jone, Mary, "Gender and Development in India 1970-1990, Some Reflections in the constitutive Role of contexs" *EPW* Vol xxxi, No-47, Nov 23, 1996

Joseph, Ammu & Sharma, kalpana, "Between the Lines: women's Issues In English Language Newspapers" *EPW,* vol.26, No.43 Oct 26 1991.pp 75-80

Chakravarti, Uma, "State, Market and freedom of Expression: women and Electronic Media" *EPW,* vol.35, No.18 Apr 29, 2000, pp12-17

Mehta, Roda, "The Media Scene in India" *EPW,* vol.23, N0.9 Feb 27,1988, pp 31-32

Rana A. Emerson, "Feminist Media Criticism and Feminist Media Practices" American Academy of political and social Science, vol.571.sep 571 pp 151-166

Engineer, Asgher ali,"Media and Minorities: Exclusions, Distortions and stereotypes" *EPW*, vol. 34, No.31.Jul 31, 1999. pp 2132-2133

Bal, Vidya. "Women's Magazines-A Positive role? Why are they all alike?" presented at: Seminar on the Role of the Mass Media in Changing the Socil Attitudes and Practices Towards Women. Organized by the press Institute of Mass Communication and I.C.S.S.R New Delhi, 1976

Chhabra, Rami. Women and the Media: What Strategies for Change? Presented at: Women and Media Conference, United Nations.New York, 1980

Varghese.B.G, Women and Media, Presented at: National Conference on Women's Studies Organized by SNDT Women's university, Bombay.1981

Mukhopadhyay,Maitrayee, Women and Development: An Indian Perspective –Presented at the World Conference of the United Nations Decade for women, Copenhagen.Denmark 1980

नैमिशराय,मोहनदास, "दोनों गालों पर थप्पड़/ दलित महिलाएं: दुहरा शोषण,दोहरा संघर्ष" दुबे, अभय कुमार(सं.)- आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2002

नारायण,बद्री, "लोकतंत्र का भिक्षुगीत: अति-उपेक्षित दलितों की अध्ययन की एक प्रस्तावना" दुबे,अभय कुमार(सं.) प्रतिमान-जनवरी-जून 2013(वर्ष-1,खंड-1,अंक-1)

गुप्ता,चारू, "रूप-अरूप,सीमा और असीम:औपनिवेशिक काल के दलित पौरूष" दुबे,अभय कुमार(सं.) प्रतिमान-जनवरी-जून 2013(वर्ष-1,खंड-1,अंक-1)

दुबे,अभय कुमार, “पटरी से उतरी हुई औरतों का यूटोपिया:राष्ट्रवाद के प्रति अख्यान” दुबे,अभय कुमार(सं.) प्रतिमान-जनवरी-जून 2013(वर्ष-1,खंड-1,अंक-1)

देशपांडे,राजेश्वरी, “क्या चाहती है वोटरें औरतें” दुबे, अभय कुमार(सं.)प्रतिमान-जनवरी-जून 2014(वर्ष-2,खंड-1,अंक-1)

श्रीवास्तव,गरिमा, “नवजागरण,स्त्री प्रश्न और आचरण पुस्तकें” दुबे, अभय कुमार(सं.)प्रतिमान-जुलाई-दिसंबर 2014(वर्ष-2,खंड-2,अंक-2)

कुमार,अरविंद, “कांशीराम और उत्तर-आम्बेडकर दलित विमर्श” दुबे, अभय कुमार(सं.)प्रतिमान-जनवरी-जून 2015(वर्ष-3,खंड-1,अंक-1)

उनियाल.एन बी.. "इन सर्च ऑफ़ ए दलित जर्नलिस्ट," *द पायनियर* 16 (1996).

गुहा ठाकुरता प्रणजांयसं ,पेड न्यूज एंड टार्फरमेशन आंफ मीडिया , बुरोशिवा दासगुप्ता , मार्किट मीडिया ,एंड डेमोक्रेसी ,प्रोग्रेसिव पब्लिशरस ,2011 ,|पेज न० -26

टैगोर शर्मिला ,हाऊ टू चैलेज द रिडक्टीब नोशन आंफ मेन स्ट्रीम जर्नलिज्म ,सं बुरोशिवा दासगुप्ता ,मार्किट मीडिया ,एंड डेमोक्रेसी ,प्रोग्रेसिव पब्लिशरस ,2011

इंजीनियर,असगर अली, “महिला दिवस और मुस्लिम महिलाएं” विष्ट,पंकज(सं.)समयांतर,अप्रैल 2011 वर्ष:42,अंक-7

सिंह,भाषा, “पत्रकारिता का स्त्री पक्ष” विष्ट,पंकज(सं.)समयांतर,फरवरी 2011, वर्ष:42,अंक-5

शर्मा,योगेंद्र दत्त, “पेड न्यूज के दौर में” विष्ट,पंकज(सं.)समयांतर, मार्च 2012, वर्ष:43,अंक-6

मीनाक्षी, “लोकतंत्र के आधार स्तंभ और यौन उत्पीड़न”विष्ट,पंकज(सं.)समयांतर,जून 2014, वर्ष:45,अंक-9

साईनाथ..पी,बुरोशिवा दास गुप्ता सं ,डिशकनेक्टिग बीटवीन मांस मीडिया एंड रियालइटी , मीडियाप्रोग्रेसिव ,कोलकत्ता ,इस्टूच्यूट आंफ डेवलपमेंट स्टडी ,मार्केट एंड डेमोक्रेशी , ,पब्लिकेशन2011

प्रसाद माता ,वाराणसी ,प्रकाशन .विश्व वि -हिंदी काव्य धारा में दलित काव्यधारा ,1992

गुप्ता,चारू, “लव जिहाद:एक सांप्रदायिक फैंटेसी”विष्ट,पंकज(सं.)समयांतर,फरवरी,2015 वर्ष:46,अंक-5

तेलतुम्बड़े,आनंद, “ब्राह्मणवादी अंहकार” विष्ट,पंकज(सं.)समयांतर,जनवरी 2016 वर्ष:47,अंक-4

मेनन,निवेदिता, “भारत में जाति और नारीवाद” भारती,अनिता(सं.)स्त्री काल,जनवरी 2013, अंक-9

मूकनायक ,14.02.1920, अनु. बेचैन सिंह श्यौराज ,बहुजन संघर्ष ,17.10.1993
बी. कपूर एस,डी.. आर अम्बेडकर, वेब डुबोइस एंड द प्रोसेस ऑफ़ लिबरेशनइकोनामिक एंड ,
,पोलिटिकल वीकलीDecember 27, 2003

रानी जया द दलित वौइस् इस सिम्पली नोट हर्ड इन द मेनस्ट्रीम इंडियन मीडिया,,15/11/2016, द वायर
कुमार रुपेशकास्ट इन गॉडस ओन , कंट्री"दलित वीमेन जर्नलिस्ट एंड फैमिली अटेकड:,राउंड टेबल

राम एन..,"द चैंजिंग रोल आंफ द न्यूज मीडिया इन कन्टेपरी इंडिया".इन इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस ,72वां सेसन ,पंजाबी यून्वर्सिटी ,2011.

विज शिवम, कास्ट इन द न्यूज़रूम, रीजनल मीडिया,**लखनऊ** , 24/06/2004, द हूट

मधोक सुजाताविमेन एंड ,कमला भसीन और बीना अग्रवाल .सं ,स्टरग्लिग फांर स्पेस ,
,नई दिल्ली ,काली फांर विमेन ,ऍनेलेसिस अटरनेटिव एंड एक्शन :मीडिया1984

आनंद.एस, 'कवरिंग कास्ट: विसिब्ल दलितइनविजिबल ब्राह्मिन ,', इन नलिनी राजन. अनु. प्रक्टिसिंग जर्नलिज्म: वैल्यूज,कंस्ट्रेंट्स इम्प्लीकेशन,. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन,2005

ईलैया कांचा स्टैफर्ड,"इफ लक्षमण प्लेज हनुमान रोल" सितंबर ,2000. https://sabrangindia.in/article/if-laxman-plays-hanuman

कूपर जे, केनेथलोअर कास्ट्स आर :इन्डियास मेजोरिटी . माइनर वाईस, 1996

रत्नामाला वी ,अनिल चमाड़िया .सं ,रजना विष्ट.अनु ,अंबेडकर और मीडिया ,"जन मीडिया" वर्ष-4,अंक 39,

अशरफ एजाज,द अनटोल्ड स्टोरी ऑफ दलित जनर्लिस्ट रिपोर्ट, , द हूट,12/ 8/ 2013,

एसफ्रंटलाइन रिपोर्ट ओन एंटी दलित वायलेंस इन :विश्वनाथन दलित इन द्रविड़ियन लैंड .
,तमिलनाडु1995-2004, नवयाना पब्लिशर्स 2009

समाचार पत्र

बुधवार,11 मई 2016 ,द टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
11 मई 2016, राजस्थान पत्रिका

11 मई 2016, राष्ट्रीय सहारा
12/5/,2016 अमर उजाला
12 मई 2016 अमर उजाला
14 मई 2016 अमर,उजाला पेज नंबर 8 ,
15 मई 2016 संडे स्पेशल देशकाल, अमर उजाला
16 मई 2016, अमर उजाला
12/5/2017, आई चौक टॉक टू डॉट इन
24 नवंबर 2016,अमर उजाला,
2 जून 2017 वेब , जनसत्ता
24 नवंबर 2016 पत्रिका समाचार पत्र समूह
1 दिसंबर 2016 इंडिया टुडे

नैमिशराय मोहनदास,"बार बार बिखरती हरिजन राजनीति-" 8 दिसंबर ,1986, नवभारत टाईम्स
कपूर मस्तराम ,"पेरियार की याद और आज के नये सबाल", 23 सिंतबर 1986, नवभारत टाईम्स
प्रसाद चंद्रभान ,"संपादकीय पेज" वर्ष ,2005. नवभारत टाईम्स
प्रसाद चंद्रभान ,"दलित से बनता बाजार" 6 जनवरी 2005, नवभारत टाईम्स

साक्षात्कार

निजी शक्षातकार ,**अंजलि देशपांडे 16 ,यूनियन सदस्य ,पत्रकार ,dec 2016,12 :30P.M दिल्ली**

निजी शक्षातकार ,छवि2017जून 9दलित महिला पत्रकार (काल्पनिक नाम), 9AM

निजी शक्षातकार ,अनीता भारती 14 नवंबर 2016, 4:25 दिल्ली

निजी शक्षातकार ,अनिल चमडिया, जन मीडिया संपादक 26/nov/2016, 7:00 p.m

निजी शक्षातकार, **सुजाता मधोक ,एक्स यूनियन प्रेसिडेंट ,पत्रकार ,17 dec 2016 ,11:10 A.M दिल्ली**

द्वितीयक स्त्रोत(Secondary Sources)

चक्रवति,उमा, "जाति समाज में पितृसता" अनु.विजय झा,ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन,नई दिल्ली,2011

विलयम्स,रेमंड, "संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र"अनु.प्रमोद झा/सत्यम वर्मा,ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली,2000

विश्वनाथन. एस, दलित इन द्रविड़ियन लैंडफ्रंटलाइन रिपोर्ट ओन एंटी दलित वायलेंस इन : ,तमिलनाडु1995-2004, नवयाना पब्लिशर्स 2009

तेलतुमड़े,आनंद, "अंबेडकर और दलित आंदोलन" अनु.कृष्ण सिंह,ग्रंथशिल्पी प्रकाशन,नई दिल्ली,2016

जैतली,ममता/शर्मा,श्री प्रकाश, "आधी आबादी का संघर्ष" राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2011

पटनायक,किशन, "विकल्पहीन नहीं है दुनिया" राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2000

चमड़िया,अनिल (सं.), "मीडिया में सांप्रदायिकता" मीडिया स्टडीज ग्रुप, नई दिल्ली, 2014

चमड़िया,अनिल (सं.), "मीडिया और मुसलमान" मीडिया स्टडीज ग्रुप, नई दिल्ली, 2014

श्रीनावसन,एम.एम., "आधुनिक भारत में जाति" अनु.रश्मि चौधरी,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2012

झा रामा ,चाणक्य पब्लिकेशन ,पोटरेयम एंड परफोरमेस :विमेन्स एंड द इंडियन प्रिंट मीडिया , ,नई दिल्ली1992

श्रीनावसन,एम.एम., "आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

बल,डा.मीरा, "राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता" वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2012

जोशी,गोपा, "भारत में स्त्री असमानता" हिंदी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय,दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2011

मेनन,निवेदिता/आर्य,साधना/लोकनीता,जिनी, "नारीवादी राजनीति: संघर्ष एंव मुद्दे" हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2011

यादव,राजेन्द्र/खेतान,प्रभा/दुबे,अभय कुमार(सं.), "पितृसत्ता के नई रूप" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

दास,अरविंद, "हिंदी में समाचार" अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद,2013

प्रसाद,चंद्रभान,1999-2003: रिफ्लेक्शन ऑफ़ अपर्थेइड इन इंडिया , नवयाना पब्लिशर्स, 2004

देसाई,नीरा/ठक्कर,ऊषा, "भारतीय समाज में महिलाएं" अनु.डा.सुधी धुसिया,नेशनल बुक ट्रस्ट,इंडिया, नई दिल्ली,2009

नारायण,बद्री/महापात्र,विष्णु/मिश्रा,अन्नत राम, "उपेक्षित समुदायों का आत्म इतिहास" वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2014

नारायण,बद्री,"हिंदुत्व का मोहनी मंत्र" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2014

नारायण,बद्री, "दलित वीरांगनाएं एंव मुक्ति की राह" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2014

बैचेन,श्यौराज सिंह, "अबेडकर,गांधी और दलित पत्रकारिता" अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्श(प्रा.) लिमिटेड,नई दिल्ली,2014

कस्तवार,रेखा, "स्त्री चितंन की चुनौतीयां" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2013

कृष्णकांत,सुमन(सं.), "इक्कीसवीं सदी की ओर" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001

गुप्ता,चारू, "स्त्रीत्व से हिन्दुत्व तक" राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2012

दुष्यंत, "स्त्रियां पर्दे से प्रजातंत्र तक" राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2012

कुमार,राधा, "स्त्री संघर्ष का इतिहास" वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2009

शिंदे,ताराबाई, "स्त्री-पुरुष तुलना"अनु. जुई पालेकर,संवाद प्रकाशन,मेरठ,2002

सिन्हा,सच्चिदानंद, "जाति व्यवस्था"राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2009

सैफी,रूबीना, "जातिवादी समाज और जाति का उन्मूलन",आधार प्रकाशन,नई दिल्ली,2016

गुप्ता,जीतेन्द्र(सं.) "जाति प्रथा:दो निबंध" अनु.रिपु गुप्ता,संवाद प्रकाशन,मेरठ,2008

सिंह,भाषा, "अदृश्य भाषा"पेग्विन ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,2012

मिश्र, कृष्ण बिहारी, "हिंदी पत्रकारिता"भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली,2006

मिश्र,प्रो.रवीन्द्रनाथ, "मीडिया और लोकतंत्र" वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2010

श्रीवास्तव,आलोक, "अख़बारनामा"संवाद प्रकाशन,मेरठ, 2008

जेफ्री,रांबिन, "समाचार पत्रों की क्रांति"भारतीय जनसंचार संस्थान,नई दिल्ली,2005

नंदा,वर्तिका, "टेलीविजन और अपराध पत्रकारिता"भारतीय जनसंचार संस्थान,नई दिल्ली,2005

मिश्र,कृष्ण बिहारी, "हिंदी पत्रकारिता"लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,1994

वाजपेयी,पं.अम्बिका प्रसाद, "समाचार पत्रों का इतिहास"

काम्बले बेबी,"द प्रिसेंस वी ब्रोक." *अनु..माया पंडित.हैदराबादः ओरिएंट ब्लैक स्वेन*(2009)

पवार उर्मिला, "आयदन." (2003).

ज्ञानमंडल प्रकाशन,वाराणसी,1953

आंर्सीनी,फ्रांचेस्का, "हिंदी का लोकवृत्त,1920-40" अनु. नीलाभ, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2011

Aggrawl, s.k., “Investigative Journalism”, Mittal Publication, New Delhi, 1991

Asaf Ali, Aruna, “The Resurgence of Indian Women” Radiant Publishers, New Delhi, 1991

Bannerji, Nirmala (Ed.), “Indian Women in a Changing Industrial Scenario” Sage Publications, New Delhi, 1973

Baxamusa, Ramola (Ed.), “Media Reflections on Women’s Movement in Readings on women’s Studies, series- 2,” Bombay SNDT Women’s University

Bhasin, Kamala and Agrawal, Bina, “Women and Media: Analysis, Alternatives & Action” Rome ISIS International, PAWF Delhi and Kali for Women, Delhi. 1984

Mazumdar, Vina (Ed.), “Women Workers in India: Studies in Emloyment and Status” Chanakya publications, New Delhi,

Natarajan, J., “History of Indian Journalism” Publication Division, Govt. of India, New Delhi 1954

Natarajan, S “A History if the press in India” Asia Publishing house, New Delhi 1962

Singh, Prabhash K., “Women in India: A Stalistical Profile” Inter India Publications, New Delhi, 1992

Sondhi, Krishan, “problems of Communication in Developing Countries” Vision Books, New Delhi, 198

Joseph, Ammu and Sharma, Kalpana (Ed.), “Whose News ?” Sage Publishing, New Delhi, 1997

Dalmia, Vasudha, “The Nationalization of hindu Traditions” Oxford University Press, New Delhi, 1997

Bathla, Sania, “Women, Democracy and the Media” Sage Publication, New Delhi, 1998

Ninan, Sevanti, “Hesdline from the Heartland” Sage Publication, New Delhi, 2007

Asthana, Pratima, “Women’s Movement in India” Vikas Publishing House (P) Ltd. Delhi,1974

Baig, Tara Ali, “India’s Women Power.s” Chand & co. (p) Ltd,. New Delhi,.1976

Chattopadhayay, Kamla Devi.”Indian Women’s Battle for Freedom” Abhinav publications, New Delhi, 1983

Dayal, Rekha(ed),”Resource book on Women’s Development”. SIDA and Department of Women and child Development, Ministry of Human Resourcess. Govt. of India, New Delhi. 1987

Everett, Jana Matson,”women and social Change in India” Heritage Publishersm, New Delhi, 1979

Mukherjee, Kanak, "women's studies in inda: some perspective" Bombay Popular prakashan, Bombay, 1986

Omvedt, Gail, "We will Smash This Prision!" Orient Longman Ltd.,New Delhi, 1979

Gallagher, Margaet, "Unepual Opportunities: The Case of Women and the Media" UNESCO, Paris, 1982

Joseph, Ammu, and Kalpana Sharma, eds. *Whose news?: the media and women's issues*. Sage, 2006.